प्राक्कथन

कलात्मक सार्थक काव्य साहित्य सृजन दीपक के समान स्वत: आलोकित होता है। उसमें प्रभावोत्पादकता स्वत: अन्तर्निहित होती है। अत: रचना को समीक्षा के बाह्य प्रकाश की विशेष आवश्यकता नहीं रहती तथापि समीक्षा का संस्पर्श सृजन की दीप्ति को उसी प्रकार सवंर्द्धित करता है, जिस प्रकार शीशे की चिमनी दीपक के प्रकाश को अधिक धवल और दीप्त बना देती है। समीक्षा का महत्व इस दृष्टि से भी है कि वह रचनाकार को उसके सृजन के गुण-दोषों का साक्षात्कार कराकर उसके सृजन की दिशा को और भी अधिक निर्दोष एवं उपादेय बनाने की सम्भावनाएँ प्रस्तुत करती है। शर्त यह है कि समीक्षा निष्पक्ष-निर्भान्त और तथ्यपरक हो। समीक्षा की शोधपरक दृष्टि असीमित और उपेक्षित सृजन को समाज और समीक्षकों के समक्ष उपस्थित करती है। प्रस्तुत समीक्षा ग्रन्थ इन्हीं उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर लिखा गया हैं।

समाज साहित्य से अभिन्न होता है और समाज में होने वाले परिवर्तनों की अनुगूँज उसमें सुनी जा सकती हैं। साहित्य की विधाएँ उससे प्रभावित होती ही है, विशेषत: गीत जीवन में अर्न्तलीन होते है, या ऐसा भी कह सकते है कि उसमें जीवन अर्न्तलीन होता है। गीत एक तरफ भले ही मनोरंजन का साधन समझा जाता हो किन्तु समाज के प्रति अपने दायित्व को भी उसने उपेक्षित नहीं किया है। गेयता, संगीतात्मकता, माधुर्य, कोमलता, भावनात्मकता की प्रधानता से युक्त हिन्दी गीतों का संसार भी समय एवं कालक्रमानुसार अपने में अर्न्तबाह्य परिवर्तन करते हुए अपना अस्तित्व अंकित करता रहा। यद्यपि समीक्ष्य कवि श्री चन्द्रसेन विराट स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी गीतिकाव्य के लब्धप्रतिष्ठ सुस्थापित कवि है। किन्तु फिर भी किसी भी रचनाकार का महत्व उसकी समकालीनता एवं समसामयिकता से ही होता है।

श्री विराट के काव्य में विशेषत: गीतों में मानवीय जनजीवन को सकारात्मक रूप से, उसकी कमियों को उद्‌घाटित करते हुए उभारा गया है। यह जीवन में भाग लेते हुए, उसकी समस्याओं से लडते-जूझते हुए आम आदमी के जीवन से जुडे गीत है। उनके गीत विपरीत परिस्थितियों में भी मानवीय मूल्यों

की सुरक्षा चाहते है। जनमानस के दु:ख पर संवेदना प्रकट करने के साथ–साथ उन पर आक्रोश भी व्यक्त करती है। श्री विराट सामाजिक यथार्थ के पथ पर खडे होकर समाज के बिखरते जीवन मूल्यों तथा त्रासद कारकों पर अपनी लेखनी चलाकर परिवर्तनकामी शक्तियों के साथ मिलकर संघर्ष में अपनी सक्रिय भागेदारी चाहते है।

समकालीनता के इस नए तेवर ने समकालीन साहित्य को एक नई दिशा और पहचान प्रदान की है। समग्रता में व्यक्ति की अस्मिता की पहचान कराते हुए वह सकर्मकता में विश्वास करती हुई हमारे अनुभवों के निजी संसार को वृहत्तर समाज से जोडती है। श्री विराट के गीतों का समसामयिकता की कसौटी पर मूल्यांकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका गीत काव्य एक गंभीर उत्साह आत्म गौरव और संघर्ष परायणता से दमक उठा।

यह लघुशोध प्रबन्ध शिक्षा मण्डल वर्धा के सभापति श्री संजय भार्गव, महाविद्यालय के प्राचार्य श्री एन. वाय. खण्डाईत पुस्तकालयाध्यक्ष श्री पी. एम. पराडकर, पुस्तकालय विभाग एवं समस्त सहयोगियों के मार्गदर्शन एवं सहयोग का प्रतिफल है। अतः उन सबके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ।

विद्यापीठ अनुदान आयोग मे मेरे प्रस्ताव को स्वीकृत कर इस शोध कार्य के लिए मुझे निधि उपलब्ध करवाई; इसके लिए मैं विद्यापीठ अनुदान आयोग का आभार व्यक्त करती हूँ।

परिवार के सभी सदस्यों, जीवन सहचर प्रा. श्री हितेश कल्याणी के प्रेरणा एवं सहकार्य, पुत्र यश कल्याणी, निमिश कल्याणी एवं पुत्री पिया कल्याणी की भी आभारी हूँ, जिनके स्नेहिल सम्बल के बिना यह शोध कार्य पूर्ण नहीं हो सकता था।

साथ ही श्री चन्द्रसेन विराट के ज्ञानपुंज आशीर्वाद के लिए भी हृदय से कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने सदैव अपना अमूल्य समय एवं स्नेहिल मार्गदर्शन देकर मेरे पथ के तिमिरआवरण को अनावृत किया।

इस शोध कार्य को पूर्ण करने में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहयोग देने वाले सभी व्यक्तित्वों के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ।

धन्यवाद।

डॉ. अनिता टेकवानी

विषय प्रवेश

रचना जनहित साधन का सारस्वत अनुष्ठान है। मनुष्य ने मानव कल्याण के लिए जितनी भी व्यवस्थाएँ निश्चित की है, उनमें सर्वाधिक सुन्दर, सर्वाधिक मांगलिक और सर्वाधिक स्थायी व्यवस्था रचना अर्थात् शब्द की है। व्यवहारत: सिद्ध है कि कोई भी रचना शब्द के स्तर पर साहित्य के रूप में मनुष्य का पथ आलोकित करती है। जहाँ सामाजिक, वाणिज्यिक, राजनैतिक व्यवस्थाओं में जल्दी-जल्दी उलट-फेर होते रहते हैं और व्यवस्थाएँ बनती बिगडती रहती है, वहाँ शब्द के स्तर पर स्थापित ग्रन्थ व्यवस्था चिरकाल तक जनहित को प्रभावित करती है। आज भी हमारे जीवन का मांगालिक पक्ष बहुत कुछ वैदिक-पौराणिक व्यवस्था से ही व्यवस्थित है। वैश्विक उदारीकरण और वसुधैव कुटुम्बकम् के भाव यदि मनुष्य को उपभोक्ता मात्र मानने वाली कुटिल व्यवसाय बुद्धि को दूर रखकर देखें तो उनमें बहुत भेद नहीं हैं। सार यह है कि चिन्तन का अमूर्त रूप जब शब्द रूप में मूर्त होकर ग्रंथाकार धारण करता है, तब मनुष्य की वर्तमान और भावी-पीढियों के निर्देशक की चिरस्थायी भूमिका में आ जाता है।

गीत, नवगीत, अगीत के पडावों को पार करती हुई हिन्दी गीतों की दुनिया ऋजुता, स्निगधता कुदुराग्रह आदि भावो से लेकर अ-तरल, अ- भावुक, अ- मधुर स्वरूप तक की यात्रा की पथिक रही है। भावना के भूचाल, उनके ज्वालामुखी, विचारों के तूफान, अनुभवों के दबाव, संगीत और विचारों का आग्रह, काव्यत्व, अ-काव्यत्व, वैयक्तिक अनुभूतियाँ, सामाजिक प्रतिबद्धताएँ, समस्याएँ, विचार-लय का आग्रह, आदि की पक्ष- विपक्ष की पक्षधर बनती गीत विधा के तेवर हिन्दी गीत विधा के विशेष बिन्दु है।

अभिव्यक्तियाँ और अनुभूतियाँ गीत को सीधे उत्तर आधुनिकता से भाव और भाषा दोनों दृष्टि से जोडती है। यही प्रतीत होता है कि भावनात्मक धरातल पर जन्मी-पनपी गीत विधा सही मंजिल, विचार, धरातल पर स्थिर हो गयी हैं और उसे प्राप्त हो गयी है गीत की समसामयिक सरोकारों के प्रति प्रतिबद्ध होने की ललक। अ-गीत के बावजूद गीत विधा अपने भाव-भाषा, विचार शिल्प को गन्ध के अन्त:स्रोत सरस्वती सी संजोती चली गयी। गीत की मूल भाव-भूमि पृथ्वी की तरह ठोस, संयुक्त और

जीवन स्रोतों से ओतप्रोत होने के कारण यह विधा समय एवं साहित्य के सभी मापदण्डों पर उतीर्ण होती चली गयी।

साहित्य में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक परिवेश, परिप्रेक्ष्य, सन्दर्भ ढूंढे जाते है। ये सरोकार स्पष्ट ठोस रूप में साहित्य में जितने चित्रित होते है, उतना ही वह साहित्य जीवन के लिए रसपूर्ण माना जाता है। अत: गीत में भी विशुद्ध आनन्द की अनुभूति तलाशने की अपेक्षा हमेशा समसामयिक सरोकार ढूंढे जाते है। यानि स्थिति चाहे जो हो, रचनाकार चाहे जिस धरातल पर हो, उसमें यथार्थ का होना शर्त सा बन गया है। परिणामत: विवेच्य लघु शोध प्रकल्प में लब्धप्रतिष्ठ गीतकार श्री चन्द्रसेन विराट के गीतों में समसामयिक चिन्तन एवं चेतना को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। उन्होंनें अपने भावों को निम्न शब्दों में व्यक्त किया है–

''दर्द आदर से सहा है हमने
ज्ञान अनुभव से रहा है मैने ।
दिल ने महसूस जो किया उसको
पूरी ताकत से कहा है मैने।।

(कुछ पलाश कुछ पाटल)

इस समीक्षा कार्य को करने के लिए इस प्रकल्प को सरल एवं सुबोध अध्ययन की दृष्टि से आठ अध्यायों में विभक्त किया गया है। निसन्देह यह शोध अध्ययन गंभीर विश्लेषण व ज्ञान की अपेक्षा रखता है; ऐसा विचारकर शोध प्रबन्ध के इन अध्यायों को विषय की दृष्टि से सरल एवं सुकर बनाने का प्रयत्न किया गया है। तथापि गलतियाँ करना मनुष्य की स्वाभाविक दुर्बलता है, अत: अज्ञानतावश इस शोध प्रबन्ध में त्रुटियों की सम्भावना हो सकती है, जिनके लिए मैं विद्वान पाठकों से क्षमा प्रार्थी हूँ। यदि इस लघु शोध प्रबन्ध के फलस्वरूप श्री चन्द्रसेन विराट का कृतित्व हिन्दी जगत के विद्वानों के समक्ष अध्ययन, मनन हेतु सहायक हो सके तो मेरे इस समीक्षा कार्य का उद्देश्य सफल होगा।

प्रस्तावना

ग्रंथरचना सभी रूपों में मानव-मंगल-विधान को प्रभावित करती है तथापि उसके प्रभाव में भेद होता है। शास्त्र करणीय-अकरणीय का भेद पिता की डाँट के समान समझाता है, जबकि साहित्य इसी तथ्य को माता की प्यार भरी समझाइश के समान समझााता हैं। पिता(शास्त्र) की डाँट से मन भयाकुल होकर जिज्ञासाओं के शमन का साहस नहीं जुटा पाता जबकि माता (काव्य) के वात्सल्यपूर्ण निषेध में सम्बन्धित विषय से जुडे प्रश्नों का समाधान पाने का साहस सहज ही बना रहता है। जहाँ डाँट कभी-कभी विद्रोह को भी उत्पन्न कर देती है, वहीं वात्सल्यपूर्ण निषेध अन्त: अनुशासन की ओर ही प्रेरित करता है। इस रूप में साहित्य की सर्जनात्मक भूमिका शास्त्र की भूमिका से कहीं अधिक मधुमती हैं, अधिक महत्वपूर्ण है। ठीक इसी प्रकार साहित्य में गद्य की तुलना में पद्य और पद्य में भी गीति विशेष महत्त्वपूर्ण है। कारण यह है कि गद्य विचार प्रधान होने के कारण बुद्धि को प्रभावित करता है, जबकि भाव व संगीत का संस्पर्श पाकर पद्य मानसिक वैचारिक विकृतियों से व्यथित अस्वस्थ चित्त को परिष्कृत और स्वस्थ बनाने की रामबाण औषधि है तथा आत्माभिव्यंजना की तरल भावधारा के प्रवाह के लिए उपयुक्त सर्वाधिक समतल पथधरातल है।

जीवन रूपी सिक्के के सुख और दुख नामक दो पहलू है, जीवन इसके बिना अधूरा है; जिस तथ्य को हम सुख के प्रकाश में देख नहीं पाते हैं, उसे हम दुख के अंधकार में सहजता से अनुभव कर लेते है। कोई भी व्यक्ति अपने जीवन में दुख नहीं चाहता, किन्तु शायद दुख ना होता तो काव्य एवं साहित्य का भी अस्तित्व ना होता, इसलिए तो कहा भी है कि-

आह से उपजा होगा गान
विरह से निकला होगा गान
निकल कर आँखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान।

सीधे स्पष्ट शब्दों में कहें तो पीडा की अनुभूतियाँ ही काव्य की जननी है। आधुनिक युग के संघर्ष और तनावों के बीच गीत ही एक ऐसा माध्यम है, जो संगीतबद्ध हो या बिना संगीत के सुना जाये, गाया जाये या गुनगुनाया जाये पर भीड भरी इस दुनिया में भी अपनेपन को तरसते मन को अकेले ना होने का

एहसास होता है। आज गीत पर भले ही भावुकता या शास्त्रीयता का आरोप लगााकर उसकी उपेक्षा की जा रही है। शैली व शिल्प की सादगी या विशिष्टता के माध्यम से किसी गीतकार को आप भले ही प्रचारतन्त्रों के माध्यम से कितना ही स्थापित करना चाहे, पर वह पाठकों के मन में उतनी जगह नहीं बना सकता है। गीत गर्भित अनुभूतियों को बहुआयामी रूप में छायावादोत्तर काल के गीतकारो ने पूरी शिद्दत के साथ लिखा है और हिन्दी की गीत विधा को समृद्ध किया है, उनमें समसामयिक चिन्ता के साथ ही चेतना भी अभिव्यक्त होती रही है।

तमाम गीतकारों में समय एवं सत्य को ठीक–ठीक समझे बिना ही अपने लिखे कृतित्व को छपने–छपाने की बेकली है, पर कोई भी साहित्यिक रचना तभी प्रासंगिक एवं प्रभावशाली बन सकती है, जब उसका कथ्य अपने समय व समाज को प्रतिबिंबित करता हो। आज अनेक गीतकार अपने समय व सत्य को समझे बिना ऐसा ताना–बाना बुन रहे है कि उनके गीत पाठकों को या तो अतीत के खण्डहर में ले जाते है या भविष्य की अंधेरी सुरंग में भटकने के लिए छोड देते हैं, ऐसे गीतो का कथ्य परीलोक की कथाओं, तोता–मैना के संवादो, वैयक्तिक अवसाद रागिनियों, दूसरे ग्रह की अबूझ पहेलियों आदि को समाये प्रतीत होता है। तथा उनमें वर्तमान जीवन जगत का कुछ भी दिखाई नहीं पडता – न सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ, न मानसिक प्रवृतियां और न देश दुनिया की कोई समस्या या उसका समाधान, वहां बस शब्दों का एक जाल रहता है, जिसमें गीतों के शिल्प की शर्तो का निर्वहन हुआ तो हुआ, वरना वह भी नहीं।

प्रस्तुत लघु शोध ग्रन्थ में श्री चन्द्रसेन विराट जी के गीतों में निहित समसामयिक चिन्तन एवं चेतना को विस्तृत ढंग से विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। अनुभूति के स्वर, राष्ट्रीयता के स्वर, चुनौती के स्वर, अभिव्यक्ति की छटपटाहट, बिखरते मानवीय मूल्यों के प्रति चिन्ता आदि भाव उनके सक्रिय चिन्तनशील, सकारात्मक व्यक्तित्व के जीवनानुभव है। उनके गीत जिजीविषा के गीत है या यूँ कहा जा सकता है कि विविध स्वरों में बद्ध जिन्दगी के गीत है। इन स्वरों में कोई भी स्वर क्षीण नहीं हुआ है, ना संघर्ष से, ना हारने से। वे सन्दर्भ, प्रतीक, बिम्बों में व्यक्त व्यक्ति जीवन के विभिन्न अनुभवों के चश्मदीद गीत है।

कवि वादों एवं विचारधाराओं से निष्पक्ष होकर भी अपने पूर्ववर्ती एवं परवर्ती विचारधाराओं में कैसे काव्य सृजन करता है और स्थल काल के परे जाते हुए स्थल को कैसे समेटता है इस तथ्य का विश्लेषण श्री विराट के काव्य अध्ययन द्वारा ही किया जा सकता है।

• अध्याय - १ •

हिन्दी गीत का उद्गम और उसकी विकासयात्रा

१.१ साहित्य का उद्भव :

जब साहित्यकार का हृदय किसी घटना, दृश्य, व्यक्ति के कृत्य, सामाजिक विक्षोभ इत्यादि से आन्दोलित होता है, तो अभिव्यक्ति के लिए वह आतुर हो उठता है. किसी भी रूप में हुई वो अभिव्यक्ति साहित्य कहलाती है। साहित्यकार अपनी अभिव्यक्ति को कल्पना कौशल, भाषा की शक्ति एवं वाणी की विदग्धता से चारुता प्रदान कर ग्राह्य बनाता है. इस प्रकार साहित्य प्रयत्नजन्य नहीं, अपितु विवशता का परिणाम अथवा नैसर्गिक होता है। यह बरबस या हृदय की भावना से उद्भूत होता है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या साहित्यकार को भावाभिव्यक्ति के लिए अथवा अपनी अनुभूति के प्रस्तुतीकरण के लिए मस्तिष्क अथवा विवेक की आवश्यकता नहीं होती ? निसन्देह आवश्यकता होती है। क्योंकि यदि भावना पर विवेक का अंकुश नहीं होगा, तो वह प्रलाप मात्र हो जायेगा, किन्तु वह विवेकशील अंकुश साहित्य को सार्थक स्वरूप प्रदान करने के लिए होता है।

साहित्य समय का अतिक्रमण करता है. मानवीय चेतना की बहुअर्थी अभिव्यक्ति है- शब्द। शब्द का प्रत्यक्ष उसके प्रयोक्ता की अंतश्चेतना - मानसिक ऊर्जा, बौद्धिक तर्क-वितर्क, मनोद्वेग तथा संवेदन आदि के बाह्य प्रकाशन के रूप में होता है। ज्ञान-विज्ञानात्मक वाङ्मयीन विधाओं की अपेक्षा साहित्य में प्रयुक्त शब्द ऊर्जा आदि अपनी समस्त शक्तियों के साथ उपस्थित होता है।

दिक्काल में घटित अथवा घट्यमान कोई भी घटना या स्थिति साहित्य के लिए अस्पर्श्य नहीं है। लेकिन काल या समय के साथ साहित्य का रिश्ता कहीं अधिक गहरा और व्यापक है। एक सजग और जीवन्त रचनाकार की रचना में उसका वर्तमान ही प्रतिबिम्बित होता और रूपाकार ग्रहण करता है। यही वर्तमान उसको नवीनता प्रदान करता हैं और अतीत को अर्थवान बनाता है।

१.२ साहित्य का अर्थ :

साहित्य का जगत-भावना, कल्पना और अनुभव का संसार है और विज्ञान का जगत-बुद्धि और तर्क का परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि विज्ञान में भावना की और साहित्य में बुद्धि की कोई आवश्यकता

ही नहीं है। मनुष्य मात्र का अधिकाधिक हित इन दोनों के समन्वय से ही है, पर फिर भी साहित्य चिर नवीन है, चिरन्तन है और आत्मिक परिष्कार हैं। अपने इसी लक्ष्य– आत्मिक परिष्कार की प्राप्ति साहित्य अलग–अलग विधाओं के माध्यम से करता रहा है।

वास्तव में प्रगतिशील, अनुभूतिशील जीवन का लिपिबद्ध व्यक्तीकरण ही साहित्य है। इसी को यों कहे कि मनुष्य का और मनुष्य जाति का भाषाबद्ध या अक्षरबद्ध ज्ञान ही साहित्य है।

ज्ञान–राशि के संचित कोश का नाम साहित्य है। जेनेन्द्र के अनुसार मानव जाति की इस अनन्त निधि में जितना कुछ अनुभूति भण्डार लिपिबद्ध है, वही साहित्य है और भी अक्षरांकित रूप में जो अनूभूति संचय विश्व को प्राप्त होता रहेगा, वह साहित्य ही होगा । साहित्य का अर्थ बहुत व्यापक है, जो कुछ ज्ञान से सम्बन्धित है, वही साहित्य है।

संस्कृत में एक शब्द हैं – वाङ्मय। भाषा के माध्यम से जो कुछ भी कहा गया, वह वाङ्मय है। **'शब्दार्थो सहित काव्यम'** अर्थात शब्द और अर्थ का सहित भाव ही काव्य है। सहित का अर्थ है– साथ–साथ होना। इस परिभाषा में प्रयुक्त सहित शब्द ही आगे चलकर साहित्य रूप में स्वीकार किया गया। वाङ्मय के दो भेद– शास्त्र एवं काव्य हैं। शास्त्र में भौतिकी, समाज या मानविकी से सम्बन्धित सभी ज्ञान इस श्रेणी में आ जाते है। लेकिन काव्य साहित्य का ही एक रूप हैं। संस्कृत आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण लिखकर साहित्य शब्द को प्रचलन में ला दिया।

आखिर इस साहित्य शब्द में ऐसी कौनसी विशेषता है, जिसके कारण शब्द एवं अर्थ शब्द की महिमा को प्राप्त करते है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए संस्कृत **आचार्य कुन्तक** कहते है कि जब **''शब्द व अर्थ के बीच सुन्दरता के लिए स्पर्धा या होड लगी हो तभी साहित्य की सृष्टि होती है।''** यही होड व स्पर्धा साहित्य का धर्म है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अत: साहित्य को पढने पर अपने आनन्द को वह सबके साथ बाँटना चाहता है और अपने उस आनन्द को कारण के साथ बताता है। उस आनन्द के पीछे शब्द और उसके अर्थग्रहण का भाव निहित हैं। वह अपने अलावा दूसरे के कार्य करने में रस अर्थात आनन्द अनुभव करता है, जब मनुष्य की कोई वाणी समाज में परस्परता के इस भाव को मजबूत बनाती है, उसे साहित्य कहा जाता है।

जब कोई अपने एवं पराये की संकुचित सीमा से ऊपर उठकर सामान्य मनुष्यता की भूमि पर पहुँच जाये तो समझना चाहिए कि वह साहित्य धर्म का निर्वाह कर रहा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे ह्रदय की मुक्तावस्था कहा है।

साहित्य शब्द को परिभाषित करना कठिन है। जैसे विज्ञान में हाइड्रोजन व ऑक्सीजन के संयोग के बिना पानी नहीं बन सकता, पर वह इन दोनों में से कुछ भी नहीं है। क्योंकि दोनों गैसों के विशेष संयोग का नाम पानी है, वैसे ही शब्द और अर्थ मिलकर साहित्य की पदवी प्राप्त करते हैं। उदाहरणत: पानी की अपनी कोई आकृति नहीं होती, उसे जिस साँचें में डालो वही रूप धारण कर लेता है, उसी तरह का तरल है यह शब्द। कविता, कहानी, नाटक, निबन्ध, रिपोतार्ज, जीवनी, समालोचना आदि बहुत से साँचे हैं, जिनमें यह शब्द विविध रूप धारण करता है। परिभाषा इसलिए भी कठिन हो जाती है कि धर्म, राजनीति, समाज, समसामयिक आलेख, भूगोल और विज्ञान जैसे विषयों पर लेखन हैं, उसकी क्या श्रेणी हो? क्या साहित्य की परिधि इतनी व्यापक हैं?

केवल संस्कृतनिष्ठ या क्लिष्ट लेखन कर केवल पाण्डित्य प्रदर्शन करना ही साहित्य रचना नहीं है, न ही अनर्थक तुकबंदी साहित्य कही जा सकती है। वह भावविहीन रचना जो छन्द व मीटर के अनुमापों में शतप्रतिशत सही भी बैठती हो, तो भी वह वैसी ही कांतिहीन है, जैसे अपरान्ह में जुगनू। अर्थात भावप्रवणता किसी सृजन को वह गहराई प्रदान करते हैं, जो किसी भी रचना को साहित्य की परिधि में लाता हैं। कितनी सादगी से निदा फाजली कहते है कि –

''मैं रोया परदेश में, भीगा माँ का प्यार
दु:ख ने दु:ख से बात की, बिन चिठठी बिन तार ।''

साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है. जीवन विविध विचारों और भावों से संकुल होता है. विचारो का सम्बन्ध मस्तिष्क से और भावों का ह्रदय से होता है। दोनों के सन्तुलित समन्वय से ही जीवन का सुचारू रूप से परिचालन होता है। मस्तिष्क विचार एवं चिन्तन-मनन के द्वारा जीवन की ऐहिक तथा पारलौकिक समस्याओं को सुलझाता हैं तथा भौतिक और आध्यात्मिक उपलब्धियों द्वारा जीवन की ऐहिक और आध्यात्मिक उपलब्धियों द्वारा जीवन को सुख समृद्धि से पूर्ण करके सुगम बनाने का प्रयत्न करता है। ह्रदय भावना और अनुभूति के द्वारा जीवन में रस उत्पन्न होता है। जीवन के प्रति आस्था जगाता है। इस प्रकार जीवन की पूर्णता को अभिव्यक्त करने वाला सम्पूर्ण कृतित्व साहित्य ही है। किन्तु हिन्दी में मस्तिष्क और ह्रदय की समग्र अभिव्यक्ति को वाङ्मय शब्द द्वारा अभिहित किया गया है तथा मस्तिष्क प्रसुत अभिव्यक्ति को **विज्ञान** और ह्रदय से प्रसूत अभिव्यक्ति को **साहित्य** की संज्ञा दी जाती है।

प्रगतिशील, अनुभूतिशील, जीवन का लिपिबद्ध व्याकरण साहित्य है। या यूँ कहें कि मनुष्य का और मनुष्य जाति का भाषाबद्ध या अक्षरबद्ध ज्ञान ही साहित्य है। मानव जाति की इस अनन्त निधि में जितना कुछ अनूभूति भण्डार लिपिबद्ध है, वही साहित्य है।

१.३ साहित्यकार की भूमिका :

साहित्यकार व्यक्तिगत रूप से अपने समय से बधाँ होता है, लेकिन उसका अंतस्फुरण समय-सीमा का अतिक्रमण करता है। रचनात्मकता अपनी विकास-यात्रा का निर्धारण स्वयं करती है। प्रतिभा जिस प्रेरणा से स्फूर्त होती है, उसका स्पंदन साहित्यकार के भीतर कहीं बहुत गहरे में होता है। वह स्पंदन इतना स्वाधीन है कि कई बार वह साहित्यकार की मान्यताओं को भी मानने से इंकार कर देता है।

जहाँ साहित्यकार अपने युग की सृष्टि है और साहित्य उसकी अनुभूति एवं उसके चिन्तन की अभिव्यक्ति है। वहीं वह युग की चेतना का वाहक और प्रहरी भी है। उसे चतुर्दिक जागरूक होकर आँखें खोलकर, देखने-सुनने-समझने एवं अपनी लेखनी से निर्भय होकर उतारने की तथा फिर उसे सही गति देने की आवश्यकता है, तभी वह अपनी वास्तविक भूमिका का निर्वाह करता है। साहित्यकार अपने युग के समाज में जन्म लेता है, पलता है, उसकी धमनियों में समाज द्वारा उत्पादित खाद्य से रक्त-संचार होता है, उसके तन का रोम-रोम उसकी मिट्टी से गढा जाता है। इसलिए उसके हृदय में भावों का उन्मेष और उसके मस्तिष्क में विचारों का उद्‌भव समाज के परिवेश के कारण ही होता है। अतएव उसका समाज के प्रति महान उत्तरदायित्व है। जिस समाज में वह जीवन जीता है, वहीं उसे साहित्य-सृजन की प्रेरणा भी देता है। समाज की परिस्थितियाँ ही उसके अन्तर को झकझोरती है, आन्दोलित करती है और उसे अभिव्यक्ति के लिए आकुल -आतुर बना देती है, तभी वह साहित्य-सृजन में समर्थ होता है और तभी उसका साहित्य जीवन्त साहित्य कहलाता है। जीवन जीवन के लिए कभी नहीं होता, जीवन के साथ किसी न किसी रूप में अनेकों का जीवन सम्बद्ध होता है, चाहे वह अपने ही जीवन की रक्षा के लिए क्यों ना हो और चाहे उसमें अपने ही जीवन में केन्द्रित रहने का भाव क्यों ना हो। साहित्य जीवन की ही अभिव्यक्ति है। इसलिए साहित्य साहित्य के लिए अथवा साहित्य स्वान्त सुखाय का प्रश्न नितान्त हास्यास्पद है। यदि साहित्य सृजन केवल अपनी सन्तुष्टि के लिए हो तो उसके प्रकाशन की क्या आवश्यकता? यदि साहित्य है, तो उसके साथ ही पाठक की भी अपेक्षा होती है और पाठक की प्रतिक्रिया जानने की भी प्रबल उत्कण्ठा रहती है अर्थात् साहित्यकार, पाठक और उसकी प्रतिक्रिया श्रृंखला की कडियों की भाँति परस्पर सम्बद्ध है। ऐसी दशा में साहित्यकार का एक दायित्व महत्वपूर्ण हो जाता है।

एक सच्चे और अच्छे रचनाकार की यही परीक्षा भूमि हैं विशेषत: कवि, उसमें भी प्रबंधकार कवि की, क्योंकि उसे प्राय: अतीत कथाओं और घटनाओं पर निर्भर रहकर उन्हें वर्तमान के संदर्भ में साधना और सर्जनात्मक कौशल के बल पर अपनी रचना के भविष्य के लिए उपयोगी बनाये रखना होता है. वह

वर्तमान में जीता हैं, अतीत को संस्कार देता है और अपने अनुभव सत्य के आधार पर भविष्य के लिए कुछ उपयोगी दिशा संकेत छोड जाता है। काल की इस त्रिआयामिता को साधने के लिए कल्पना दृष्टि, ऊर्जस्विता, समय की विषमता से लडने की अद्‌भुत शक्ति, विद्रूपता के विरुद्ध द्वंद की स्थिति में खडे होने की सामर्थ्य की जरूरत है जो विरले साहित्यकारों में ही मिलती है। सच्चा साहित्यकार न तो प्रलोभन से विचलित होता है और न ही कोई भय उसे अभिव्यक्ति से रोक सकता है. सन्त कुम्भनदास ने राजाग्रह से फतहपुर सीकरी जाने पर पश्चाताप प्रकट करते हुए कहा–

'संतन कहा सीकरी सो काम
आवत–जावत पनहियाँ टूटीं बिसरि जात हरि नाम।'

यही स्वतन्त्र और उन्मुक्त भावना जब साहित्यकार की होती है, तभी वह अपनी वास्तविक भूमिका का निर्वाह कर सकता है. स्वतन्त्रता पूर्व के साहित्यकार ने अपने युग में क्रांति की ज्वाला सुलगाई, असहयोग की वीणा भी सुनाई और विद्रोह का शंखनाद कर स्वंय स्वतन्त्रता के महायज्ञ में आत्माहुति भी दी। मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचन्द, बालकृष्ण शर्मा नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, यशपाल, आदि अनेक साहित्यकारों ने तन–मन से स्वतन्त्रता समर में भाग लेकर अपनी भूमिका का निर्वाह किया। तत्कालीन साहित्यकार ने जन चेतना को उद्‌बुद करते हुए स्वतन्त्रता समर को गति दी। उसने विदेशी शासन के दमन–चक्र में पिसती हुई भारत माँ की करुण पुकार को सुनकर उसे दास्यश्रृंखला से मुक्त होने में अपना पूर्ण सहयोग किया। फलत: वह साहित्य आज भी जीवन्त प्रतीत होता है। साहित्यकार तो जनता की पीडा का स्वयं भोक्ता है, वह उसके प्राणों के स्पन्दन को अपने प्राणों में अनुभव करता है और अपने कानों से सुनता है; इसलिए वह अपने साहित्य के द्वारा उसके हृदय को आन्दोलित कर उसे अपनी कल्पना को साकार करने के मार्ग पर अग्रसर कर सकता है।

स्वान्त सुखाय का उद्‌घोष करने वाले सामन्तयुगीन भक्त कवि तुलसी का रामचरित मानस क्या केवल स्वान्त सुखाय ही है? यदि उसका स्वरूप केवल स्वान्त सुखाय ही होता तो उसे भाषाबद्ध करने के लिए प्रयास करने की क्या आवश्यकता थी? वस्तुत: अपने युग में यह भी एक दायित्व था और इसमें सन्देह नहीं कि अपने उस दायित्व का उन्होंने भलीभाँति निर्वाह किया है। तुलसी ने कहा भी है कि–

'भनिति भदेस वस्तु भलि बरनी, राम कथा जग मंगल करनी।'

युग के प्रश्नों ने साहित्यकार को कितना झकझोरा है, उसके भीतर कैसी आग लगायी है, उसे कहाँ तक आहत किया है और उसकी लेखनी ने कितनी संवेदना से, कितनी शिद्‌दत से उसे अंकित किया हैं।

हिन्दी साहित्य के विशाल फलक पर पिछले पचास–साठ सालों में कितने आन्दोलनों ने धूम मचाई; अब तो उनके नाम भी याद नहीं आ रहे। आंधियां ऐसी आयी कि खेमे ही उखड गये। यह दृश्य इस बात को प्रमाणित करता है कि साहित्यकार भेडों के समान नहीं होते जो अपने रेवडों में एक दूसरे के पीछे चलती हैं; बल्कि प्रत्येक लेखक का अपना व्यक्तित्व होता है, उसकी सोच का अपना आधार बिन्दु होता है। फैशन के रेंप पर सृजनात्मकता की परेड नहीं करवाई जा सकती। सोच की चिंगारियाँ एकान्त के अलाव से ही फूटती है।

यह तर्कपूर्ण तथ्य है कि इस रामकथा ने न केवल उस युग का, अपितु उसके बाद भी आज तक के युग का पथप्रदर्शन किया है। इसीलिए अगर साहित्यकार अपना दायित्व निभाता है तो वह सार्थक साहित्य का सृजन कर सकता है।

१.४ सत्साहित्य का स्वरूप :

‘मलयालम साहित्यकार एस. के. पोट्टेकाट्ट के अनुसार – सत्साहित्य वह है जो मानव मस्तिष्क में सद्‌भावना का विकास करे, समाज को श्रेष्ठ विचारों को संजोने की सामर्थ्य प्रदान करे, जहां तक साहित्य सृजन के उद्देश्य का सवाल है, मेरे लिए आत्मसंतोष ही साहित्य सृजन का प्रमुख तत्व है। रचना में निमग्न होते समय साहित्यकार का हृदय एक विशेष प्रकार की प्रसन्नता से आप्लावित हो जाता है। इस प्रसन्नता व आनन्द के भावों को पाठकों तक पहुँचा देने के लिए ही मन लालायित होता है।

याद रहे कि साहित्य समय की कोख से जन्म लेकर भी उसी की गोद में खेलता नहीं रहता. वह समय का अतिक्रमण करता है और नयी जीवनी शक्ति के साथ डालकर नया विहान लाता है। घोर अंध तमस में भी कहीं कोई न कोई एक विशिष्ट द्रष्टा ऐसा होता है, जिसकी अंत:ज्योति का प्रकाश हमारे पथ को आलोकित करता है। जो साहित्य काल पर अपनी जीवन्तता और सशक्तता की अमिट छाप छोड जाता है; वह कालजयी साहित्य कहलाता है। जो साहित्य जन चेतना में युगों–युगों तक निवास करता है; वहीं कालजयी साहित्य सत्साहित्य कहलाता है।

१.५ साहित्य और समाज :

कुछ काल पहले तक हमारा साहित्य उच्चवर्गीय था। उस साहित्य के सृजनकर्ता समाज के प्रतिष्ठा प्राप्त व्यक्ति थे, पर समय के बदलते मापदण्डों के अनुसार साहित्य सृजन भी अब किसी एक वर्ग की धरोहर बन कर नहीं रह गया है, जिनको समाज में पैर टेकने की भी ठौर नहीं है, वे व्यक्ति भी अब लिखते

हैं। पर इन सबसे परे प्रश्न यह उपस्थित होता है कि समाज की ओर साहित्य के क्या दायित्व है? दोनों में परस्पर क्या सम्बन्ध है?

वर्तमान युग में साहित्य अधिकाधिक व्यक्तिगत होता जा रहा है। पहले समाज की नीति-अनीति की, मान्यताओं की ज्यों की त्यों स्वीकृति समाज में प्रतिबिम्बित दिखती थी, अब उसी साहित्य में समाज की उन स्वीकृत और निर्णीत धारणाओं के प्रति व्यक्ति का विरोध और विद्रोह अधिक दिखाई पडता हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि साहित्य यदि पहले दर्पण के तौर पर सामाजिक अवस्थाओं को अपने में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से धारण करने वाली वस्तु थी तो अब वह कुछ ऐसा तत्व है जो समाज को प्रतिबिम्बित तो करे, पर चाटुता से अधिक उसे चोट दे और इस भाँति समाज को आगे बढाने का भी काम करे। साहित्य अब प्रेरक भी है, वह झलकाता ही नहीं अपितु चलाता भी है। केवल हमारा अतीत, हमारी बीती ही नहीं, अपितु हमारे संकल्प और मनोरथ उसमें निहित है।

जो समाज के प्रति विद्रोही है, समाज के नीति-धर्म की मर्यादाओं की रक्षा की जिम्मेदारी अपने ऊपर न लेकर अपनी ही राह चल रहा है, जो बहिष्कृत है, दण्डनीय है- ऐसा व्यक्ति भी साहित्य सृजन के लिए अयोग्य नहीं ठहराया जा सकता। प्रत्युत देखा गया है कि जो आज तिरस्कृत किये जाते है, वही अपनी अनोखी लगन और निराले विचार साहित्य के कारण कल आदर्श मान लिये जाते है। **साहित्य दो प्रकार के है- एक वह जो समाज की समकालीन स्थिति के लिए आवश्यक हैं, दूसरा वह जो समाज** को गतिशील बनाता हैं। दोनों ही प्रकार के साहित्य प्रयोजनीय हैं। लेकिन यदि अधिक आवश्यक, अधिक सप्राण, अधिक साधनाशील और अधिक चिरस्थायी किसी को हम कहना चाहें तो उस साहित्य को कहना होगा जो अपने ऊपर खतरे स्वीकार करता है और चाहे चाबुक की चोट से ही क्यों ना हो, समाज को आगे बढाता है। वह साहित्य आदर्श प्राण होता है, भविष्यदर्शी होता है, चिरन्तन होता है, किन्तु ऐसा साहित्य सहज मान्य नहीं होता। पहले प्रकार के साहित्य में समाज स्वाद लेता है, प्रसन्न होता है पर दूसरे प्रकार के साहित्य मे ंसमाज को शुरू में कुछ फीका, कठिन और गरिष्ठ महसूस होता है।

साहित्य सामाजिक अवस्था से आगे होकर चलता है। वह न सिर्फ वर्तमान को प्रतिबिम्बित करता है अपितु भविष्य की सम्भावनाओं को भी धारण करता हैं। वह अग्रगामी है समाज की गति धीमी और विचारों की गति तीव्र होने के कारण समाज साहित्य से अनुरंजन ही अधिक पाता है, नेतृत्व कम। साहित्य भावनाजीवी है जबकि समाज अर्थजीवी। अत: उनमें परस्पर आदान-प्रदान तो है ही साथ ही विरोध भी है; किन्तु विरोध तो साहित्य का प्राणतत्व है। अपने सीमित अस्तित्व से हम उस असीम को छूना चाहते

हैं, हम अपनी ही सीमाहीनता को अपने सीमाबद्ध अस्तित्व के भीतर अनुभूति पाते हैं– वे ही क्षण तो साहित्य के जनक हैं. वास्तव में साहित्य समष्टि के साथ व्यष्टि की सामंजस्य सिद्धि का साधक होता है. व्यक्ति जीवन की सत्योन्मुख स्फूर्ति जब भाषा द्वारा मूर्त और दूसरे को प्राप्त होने योग्य बनती है, तब वही साहित्य होती है।

जब तक सत्यान्वेषण की प्रवृति साहित्यकार में है, वे सुन्दर साहित्य की सृष्टि कर सकते हैं यदि नही ंतो व्यर्थ है– क्योंकि जीवन से अनपेक्षित साहित्य न तो जिन्दा रह सकता है, न ही समाज को मार्ग दिखा सकता है। साहित्य वह है जो यर्थाथ से आँख नहीं मींच सकता, जो आदर्श को यथार्थ से और यथार्थ को आदर्श से जोडता हैं।

साहित्य की कसौटी वह संस्कारशीलता है जो हृदय से हृदय का मेल चाहती है, जो लोक हित की भावना को लेकर चलता है और एकता में निष्ठा रखती है। जो सहृदय का चित मुदित करता है वह साहित्य खरा तथा जो चित को संकुचित करता है वह खोटा साहित्य कहलाता है। साहित्य का सर्वोत्तम निकष सत्यं, शिवं और सुन्दरम् ही है। सत्य से तात्पर्य जीवन से विमुख करने वाले कठोर और निर्मम यथार्थ से न होकर मानवीय कल्याण की दिशा निर्देशित करने वाले आदर्श पूर्ण यथार्थ से है। शिव से तात्पर्य साहित्य की सामयिक एवं शाश्वत उपादेयता से है। सुन्दर का अर्थ भी सत्य और शिव प्रेरित प्रभावोत्पादकता का व्यंजक है।

आज के साहित्य की सबसे बडी आवश्यकता सृजन के प्राचीन और नवीन मूल्यों में युक्तियुक्त समन्वय स्थापित करने की है. **पालि भाषा के प्रसिद्ध ग्रन्थ सुत्तनिपात** में स्पष्ट निर्देश दिये गये है कि – **'पुराणं नाभिनन्देय, नवे खान्ति न कुव्वये'** अर्थात पुराने का अभिनन्दन ना करें और नये की उपेक्षा न करें। विचारणीय है कि क्यों? क्या उपादेय होने पर भी प्राचीन को केवल इसी लिए त्याग दिया जाये कि वह प्राचीन है और नवीन को व्यर्थ होने पर भी उसकी नवीनता मात्र के लिए स्वीकारा जाये? मेरे विचार से इस सन्दर्भ में उपयोगिता का निकष सर्वोत्तम है. जो जीवन के लिए उपादेय है, समाज के लिए व्यवहार्य और साध्य है, लोकमंगलकारक है वही ग्राह्य है, फिर चाहे वह नवीन हो या प्राचीन। इसीलिए **मालविकाग्निमित्रम् में महाकवि कालिदास कहते है–**

''पुराणमित्येव न साधु सर्वम्

न चापि सर्वम् नवमित्यवद्यम्।

सन्त: परीक्ष्यान्तरद् भजन्ते

मूढः पर प्रत्ययनेय बुद्धिः''

अर्थात् पुराना होने से सबकुछ श्रेष्ठ नहीं हो जाता, तथा नया मात्र होने से अग्राह्म नहीं हो जाता। बुद्धिमान जन दोनों को परखने के बाद ही, जो उपयोगी व उत्तम होता है, उसे ग्रहण करते है; जबकि मूढ जन दूसरों द्वारा कथित विश्वासों के अनुसार ग्राह्मता विनिश्चित करते है। सार यह है कि भारतीय काव्य-शास्त्र का प्राचीन निर्देशन और नवचिन्तन दोनों वैचारिक मन्थन की अपेक्षा करते है और दोनों के युक्तियुक्त संग्रहण से सृजन समीक्षा की नव दिशाओं का निर्देशन अपेक्षित है।

१.६ हिन्दी साहित्य का विभाजन :

हिन्दी साहित्य को विविध विद्धानों ने विविध कालों में बाँटा हैं- आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल एवं आधुनिक काल। विषय विस्तार के भय से यहाँ उसका विस्तृत वर्णन नहीं किया गया है।

१.७ गद्य की अपेक्षा पद्य का वैशिष्ट्य : कविता का उद्‌भव :

अन्य विधाओं की अपेक्षा कविता में भावप्रवणता एवं कल्पनाविलास अधिक होती है। वह तीव्रावेग से अभिभूत होने के कारण भावक के ह्रदय को सर्वाधिक प्रभावित करती है। यदि भावना का प्रवाह वाणी की विदग्धता ओर भाषा के लालित्य से मण्डित होकर आवेगमय रहा, तो वह रस मग्न होकर आत्मविभोर कर देती है। अत: कविता में ह्रदय या भावना का प्राधान्य रहता है, किन्तु विवेक का अंकुश उसके लिए भी आवश्यक है, अन्यथा वह वांछित प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सकती। इसलिए आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य का विधान किया है। वे तो औचित्य को ही कविता का प्राण तत्व बनाते हैं औचित्य क्या है? विवेक की प्रक्रिया का ही दूसरा नाम औचित्य है। औचित्य के अभाव में कविता अपनी आत्मा के रस को खो बैठती है; तभी तो आचार्यो ने ऐसी कविता को रसाभास और भावाभास के अन्तर्गत स्थान दिया है। रसाभास और भावाभास का अर्थ है - विवेक के अंकुश की शिथिलता. सामाजिक, सांस्कृतिक, एवं साहित्यिक विधि निषेध का निर्धारण विवेक ही करता है और जब कवि भावावेग के कारण विधि को त्याग कर निषेध की सीमा में प्रवेश कर जाता है तो औचित्य का उल्लंघन हो जाता है; तब काव्य दोष से दूषित हो जाता है। उस समय स्वरचित होने के कारण चाहे उसे अपनी कृति प्रिय हो,पर सह्रदय को वह दूषित कृति रुचिकर नहीं होती; ऐसी स्थिति में कवि कर्म व्यर्थ हो जाता है। कवि की भावना को प्रभावशाली एवं ग्राह्म बनाने का कार्य उसका विवेक ही करता है। यहाँ दो उदाहरणों से यह तथ्य स्पष्ट किया जा सकता है- जनक वाटिका में पुष्प चयनार्थ राम-लक्ष्मण प्रवेश करते हैं; उसी समय सीता अपनी सखियों के साथ

गिरिजा-पूजन के लिए आती है। एक सखी की दृष्टि राम-लक्ष्मण पर पडती है; वह उनके सौन्दर्य से अभिभूत हो जाती है, और इन शब्दों में सीता के प्रति अपनी भावना की अभिव्यक्ति करती है-

'स्याम गौर किमि कहहुँ बखानी, गिरा अनयन नयन बिनु बानी।'

रामचरित मानस-१-२२८-१

वह सौन्दर्य की व्यंजना करने में अपने को असमर्थ पाती है, किन्तु गिरा अनयन नयन बिनु बानी' के द्वारा उनके अपरूप, अप्रतिम एवं अद्‌भुत सौन्दर्य का आभास दिला देती है। उसकी भावना का वेग इन श्शब्दों के द्वारा व्यक्त होकर न केवल उसकी उत्फुल्लता, उसके आश्चर्य एवं उसकी भाव-विभोरता को व्यंजित करता है अपितु उनके सौन्दर्य के प्रति आकर्षण और जिज्ञासा का भाव भी जगाता है; यही तुलसी को अभीष्ट भी है। कवि की भावना विवेकाश्रित होकर ऐसा रूप धारण करती है कि सौन्दर्य अकथनीय होकर भी अनुभूत हो जाता है. सौन्दर्य की अतिशयता का दूसरा वर्णन देखिये-

'पत्रा हीं तिथि पाइए, वा घर के चहुँ पास.
नित प्रति पून्यो ही रहे, आनन ओप उजास.'

बिहारी बोधिनी-१०२

इस पद्य को पढकर प्रतीत होता है कि या तो कवि के पास भावना नहीं है या उसकी भावना पर विवेक का अंकुश नहीं है; क्योंकि इस पद्य से रूप की कोई अनुभूति नहीं होती। अतिरंजना के कारण यह वर्णन हास्यास्पद हो जाता है। अब प्रकृति सौन्दर्य के एक उदाहरण को देखिये- केशव प्रात:कालीन सौन्दर्य की मनोरम छटा की अनुभूति कराने के लिए अत्यन्त रमणीय शब्द-योजना प्रस्तुत करते-करते कह उठते हैं कि -

'कै शोणित कलित कपाल यी किल कापालिक काल कौ.'

रामचन्द्रिका

पाठक को प्रतीत होता है कि यहाँ कवि का विवेक विलुप्त हो गया। कहाँ प्रात:कालीन अरुणिमामय सूर्य और कहाँ रक्त-रंजित कपाल! एक तो कपाल शोणित से कलित नहीं हो सकता, शोणित- सनित-घृणित ही हो सकता है, फलत: वह आकर्षण नहीं विकर्षण ही उत्पन्न करेगा। कवि ने न केवल विवेकहीनता के कारण भाव के सौन्दर्य का ह्रास किया है; अपितु वृत्यनुप्रास को भी कलंकित कर दिया है। हिन्दी के छायावादी काव्य जब केवल कल्पना के गगन में विहार कर भू की वास्तविकता को छोडने लगा, तब वह समाप्त हो गया, अतएव कवि की भावना के साथ विवेक का सामंजस्य करना अपेक्षित है।

कविता में भाव की कार्यवाही, इंसानियत एवं स्वंय के प्रति निकटता एवं प्रकृति की रहस्यमयी अभिव्यक्ति का समावेश होना आवश्यक है।

१.८ गीति काव्य का स्वरुप एवं उत्पति :

साहित्य को गद्य, पद्य एवं चम्पू तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया गया है। गद्य के समान पद्य के भी विविध विभाजन किये गये है। कविता, गीत, गजल, मुक्तक, दोहा, शेर, आदि पद्य के रूप है।

गीत : वेदना एवं उल्लास के अतिरेक से मानव की हदयतंत्री स्पंदित होकर जो स्वर विधान करती है, वह गीतिकाव्य की संज्ञा प्राप्त करता है। हर्ष- विषाद, सुख-दुख, प्रसन्नता-पीडा तथा मिलन-वियोग का उल्लास एवं वेदना जब हदय की परिमिति का उल्लंघन कर जाती हैं, तो उसका प्रस्फुटन या तो आनन्द के मुक्ताकणों या व्यथा के अश्रुओं अथवा गीतिमय स्वर लहरी के रुप में होता हैं। यदि ऐसा ना हो तो हदय विदीर्ण हो जाये, उसकी गति बन्द हो जाये और मानव उसकी अभिव्यक्ति की शक्ति को सदा के लिए खो बैठे। अत: गीत या गीतिकाव्य उसके हदय को विषाद के क्षणों में ऐसी क्षमता प्रदान करता है, जिससे वह अन्य मानवों को समानभागी बनाकर हल्का हो जाता है। गीत का उद्‌गार स्वाभाविक है। आवेगों और मनोवेगों की तीव्रता स्वत: ही गीति के रुप में प्रवाहित होकर मानस लहरी को कण्ठ के द्वारा अधरों पर थिरकाने लगती है। यही काव्य का मूल भी है। आदि कवि की वाणी से जो छन्दमय स्वर लहरी निकली थी, वह आदि गीतिकाव्य ही थी। रति-रत क्रोंच मिथुन में से व्याध द्वारा एक का वध होने पर दूसरे की आर्तवाणी को सुनकर तपस्पूत मुनि का कोमल हदय करुणा से विगलित होकर इन शब्दों में अभिव्यक्त हुआ है :-

''मा निषाद प्रतिष्ठान्त्वगमः श्शाश्वती समा:।
यत्क्रोंचमिथुनादेकमवधी: काममोहिताम्।।''

क्रोंच मिथुन के असीम आन्नद के असीम व्यथा में परिणत होने पर ही अनुष्टुप छन्द में यह अभिव्यक्ति हुई, जिसमें गीति काव्य के सभी तत्व समाहित है। इससे प्रमाणित होता है कि गीति काव्य का जन्म या तो वेदना की मनोभूमि में होता है या उल्लास के क्षणों में। कविवर पन्त ने भी काव्य के मुखर होने के सम्बन्ध में यही कल्पना की है :-

''वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगाा गान।
उमड कर आँखों से चुपचाप बही होगी कविता अनजान।।''

अर्थात आह से प्रसूत गान ही श्रोता के हदय को अभिभूत करने में सफल होता हैं, इसमें संदेह नहीं। यही गीति काव्य के जन्म की कहानी है।

गीत प्रयत्न का परिणाम नहीं, अपितु हदय के स्वाभाविक उद्रेक का प्रतिफलन है। अत: उसमें वैयक्तिकता का, एकान्तिकता का भाव पाया जाता है। किन्तु, मानव के सुख-दुख पूर्ण भाव एवं आवेग प्रकट होकर मानव मात्र के हो जाते है। फलत: उनमें सभी को आन्दोलित करने की क्षमता होती है। **प्रसिद्ध गीतकार कवयित्री श्रीमती महादेवी वर्मा** गीतिकाव्य के इस रहस्य का उद्घाटन करते हुए कहती है- वास्तव में कवि को आर्त क्रन्दन के पीछे छिपे हुए भावातिरेक को दीर्घ नि:श्वासों में छिपे हुए संयम से गीत को बाँधना होगा, तभी उसका हदय गीत में उसी भाव का उद्रेक करने में सफल होगाा। विशेषत: लोक गीत तो जन समाज के हर्ष-विषाद, सुख-दुख, व्यथा-उल्लास, घृणा-प्रेम, आशा-निराशा तथा मिलन-वियोग के भावों का प्रतिबिम्बन होता है। उनमें जहाँ जीवन के मादक उल्लास की मनमोहक व्यंजना होती है, वहीं जीवन की विषम घडियों में प्रवाहित अश्रुधार भी छलकती है । इसी से प्रत्येक समाज में प्रत्येक जाति में वहाँ की जनभाषा में लोकगीत पाये जाते हैं और जीवन के प्रत्येक अंग का उनसे गहनतम सम्बन्ध होता है।

पाश्चात्य समीक्षा शास्त्र से अभिभूत अनेक आलोचक गीतिकाव्य को अंग्रेजी के लिरिक का उपजीवी मानते है, जिसकी व्युत्पति लायर नामक वाद्य यंत्र से हुई है। इसलिए उसको वैणिक (वीणा से उद्भूत) संज्ञा भी दी गई है। किन्तु आलोचक ये भूल जाते है कि गीतिकाव्य का मूल वेदों में है। साम का तो अर्थ ही गान होता है। हिन्दी के कबीर, तुलसी, सूर और मीरा प्रभृति अनेक भक्त कवियों ने अपने उद्गार गीतिकाव्य के माध्यम से ही व्यक्त किये है। आधुनिक गीति काव्य भी उस परम्परा से विच्छिन्न नहीं है।

गीत मानव मन की प्रकृति है – मानव को अनुभव होने वाले हर्ष और पीडा को व्यक्त करने का लोकप्रिय आदिम माध्यम है गीत। वस्तुत: गीत का प्रयोग प्राचीनतम है, क्योंकि गीत में मानवीय वृतियाँ अपने सहज स्थिति में व्यक्त होती है। गीत को इस उल्लेखनीय उपलब्धि का आधारभूत तत्व है- गेयता। प्रारम्भ में इसकी परिभाषा में यही तत्व प्रधान था। इस आधार पर गीत वही है जो गाया जा सके। गीत के षडविध लक्षण इस प्रकार है-

सुस्वर सरसं चैव, सराग मधुराक्षरम।
सालंकार प्रमाण च, षडविध गीत लक्षणम।।

इन लक्षणों में विषयवस्तु की स्पष्ट अभिव्यंजना नहीं थी, मात्र उसके बाहरी लक्षणों का उल्लेख था। वस्तुत: विषय वस्तु मन की स्थिति पर आधारित रहती है। मन अपने सुखात्मक या दुखात्मक अनुभवों को गीत के माध्यम से व्यक्त करता है।

गीत का प्रारम्भिक रूप लोकगीतों के रूप में गतिशील हुआ। यह सांस्कृतिक उपादान प्रारम्भ से लेकर आज तक निरन्तर व्यक्ति और समाज को अपने आकर्षण में बाँधता चला आया है। इन्हीं लोकगीतों का विकसित रूप साहित्यिक गीत हैं।

साहित्यिक गीत : कला का प्रमुख तत्व भाव है। जब निर्वसन भाव किन्ही भावों के कारण कलाकार के कलात्मक संस्पर्श से विशिष्ट बनकर सामने आता है,तब युक्तियुक्तता के आधार पर रसिकों को हार्दिक सन्तोष होना स्वाभाविक ही है। समस्त कलारूपों की तरह गीत भी इसी प्रक्रिया से जन्म लेते है और अपने विशिष्ट व्यापार के फलस्वरूप साहित्यिक प्रतिष्ठा से सम्पन्न होते है। गीत की अदम्य शक्ति और मानसिक भावों से उसके सहज तालमेल ने उसे साहित्यिक प्रतिष्ठा से सम्पन्न किया। उसमें जीवन के शाश्वत स्वरों की अभिव्यक्ति होने से गीत अधिकाधिक लोकप्रियता प्राप्त करता चला गया। इसकी भावात्मक प्रबलता, वैयक्तिकता, संगीतात्मकता, संक्षिप्तता, भाषा की कोमलता और मुक्तक रचना पद्धति ने गीत को साहित्य की अन्यान्य विधाओं में श्रेष्ठतर बना दिया।

गीत की विविध परिभाषाएँ : इस प्रसंग में गीत के स्वरूप को उदघाटित करती हुई कुछ परिभाषाएँ निम्न प्रकार से है–

१. **रस्किन** ने गीत की विशेषताओं के आलोक में उसे परिभाषित करते हुए लिखा है– गीति काव्य कवि की निजी भावनाओं का प्रकाश होता हैं। सहज शुद्ध भाव, स्वछन्द कल्पना तर्कवाद और न्याय मूलकता से मुक्त विचार – ये ही गीतिकाव्य की वास्तविक विशेषताएँ हैं। वस्तुत: गीत मन की बात है, अत: उसमें निजी भावनाओं की अभिव्यक्ति प्रमुख होती है। कवि सहज एवं मुक्त होकर अपने अनुभूति सम्पन्न हृदय को ही गीत के माध्यम से प्रस्तुत करता है, जिसमें किसी तरह का कालुष्य नहीं, अपितु एक दिव्य पवित्रता अनुभव होती हैं।

२. गीत के स्वरूप को ओर विस्तार देते हुए **ब्रुनेतियर** का मत है कि – गीतिकाव्य में कवि भावानुकूल लयों में अपनी आत्मनिष्ठ वैयक्तिक भावना व्यक्त करता है।

३. **अर्नेस्टरिस** की मान्यता है कि गीतिकाव्य एक ऐसी संगीतमय अभिव्यक्ति है, जिसके शब्दों पर भावों का पूर्ण अधिपत्य होता है, किन्तु जिसकी प्रभावशालिनी लय में सर्वत्र उन्मुक्तता रहती है।

४. गीत को परिभाषित करते हुए साहित्यकोष में लिखा है- अबाध कल्पना, असीम भावुकता, विशुद्ध भावात्मकता, कर्म कोलाहल की चिन्ता से मुक्त विचारधारा अथवा निष्कर्षोपलब्धि के भार से मुक्त भावधारा गीतिकाव्य के प्रकृत विषय है। इसमें सिद्धान्तीकरण का अवकाश नहीं। विचार को भी गीति में भावात्मक माध्यम से ग्रहण करना पडता है। वस्तुत: गीत भावना के साम्राज्य की विषय वस्तु हैं। अत: उसकी स्वच्छंदता से पूर्ण रचना पद्धति भावना को आन्दोलित करती हैं। भावना से असम्पृक्त कोई विचार अपने प्रकृत रूप में गीत में बँध नहीं सकता है। यही नहीं, बल्कि उपदेशात्मकता या वर्णनात्मकता भी गीत के प्रकृत रूप को तोडकर उसे प्रभावहीन बना सकती हैं। अत: गीत कभी सिद्धान्तवादी नहीं होते बल्कि शुद्धत: भावात्मक धरातल पर स्थित होते हैं। इसलिए गीत में कवि की निजी भावधारा अनुभूतियों के आलोक में लयात्मक अभिव्यक्ति से सम्पन्न होकर ही गीत बनती है। चुँकि अभिव्यक्ति आत्मनिष्ठ है, अत: उसमें आत्मीय संस्पर्श की शक्ति निहित होती है।

५. **श्रीमती महादेवी वर्मा** ने गीतिकाव्य की विशेषताएँ उदघाटित करते हुए कहती है। उनका मत है कि- सुख दुख की भावावेशमयी अवस्था, विशेषकर गिने-चुने श्शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीति हैं। महादेवी जी ने तीव्र अनुभूति, संगीत और उपयुक्त श्शब्द चयन इन तीन विशेषताओं पर अधिक बल दिया है।

६. गीत के सम्बन्ध में श्री लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का मत भी दृष्टव्य है। उन्होंनें गीत के प्रमुख तत्वों को समटते हुए उसकी परिभाषा इस प्रकार निर्धारित की गई है- गीत एक ऐसी काव्य विधा है, जिसके आधारभूत तत्वों में गेयता, संक्षिप्तता, अनुभूति की तीव्रता, वैयक्तिता, आत्मनिष्ठा, अभिव्यक्ति की सीमितता, बुद्धि पक्ष के स्थान पर हृदय पक्ष की प्रधानता, स्वानुभूति, सहजता, भावानुकूल यर्थाथ, सुख-दुखात्मक वैयक्तिक संवेदना, प्रकृति और मानव का अन्त:-बाह्य सौन्दर्य चित्रण, भाव सघनता आदि प्रमुख तत्व माने गये है। इन परिभाषाओं से यह परिज्ञान होता है कि गीत कवि के निजी भावों की अभिव्यक्ति हैं, जो विविध अनुभूतियों से निष्पन्न होते हैं तथा यह अभिव्यक्ति प्रभाव शालिनी लय द्वारा

संयुक्त रहती हैं। इस प्रकार संगीत का गीत की प्रतिष्ठा में महत्त्वपूर्ण स्थान है। अत: गीत के आधारभूत लक्षण दो ही है–

१. तीव्र निजी अनुभूति की मुक्त अभिव्यक्ति २. अन्तर्निहित संगीतात्मकता।

किन्तु इन कतिपय परिभाषाओं के आधार पर गीत के निम्न लक्षण निर्धारित किये जा सकते है–

१. गीत में अनुभूति सम्पन्न तीव्र भाव बोध की मुक्त अभिव्यक्ति निहित है।

२. संगीतात्मकता या लयात्मक विधान गीत के स्वरूप को निर्धारित करता है।

३. मन से संयुक्त होने के कारण गीत सौन्दर्य बोध का चित्रण तीव्र होता है।

४. वैयक्तिकता गीत को गीत रूप में प्रतिष्ठापित करती है।

५. अपनी स्वच्छन्द एवं लघु प्रकृति के कारण गीत आकार में लघु होते है।

६. गीत की रचना पद्धति भाषा शिल्प के अनुकूल वातावरण से संयुक्त रहती है।

यद्यपि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो उपरोक्त तत्व ही गीत के प्रधान तत्व है। इनके कारण ही कवि अन्तरात्मा में समाई तीव्र अनुभूतियों का प्रकटीकरण और भावक के हृदय के उद्देलन का शमन गीत में एक साथ होता है। यह उसकी सामर्थ्य का परिचायक बिन्दु है।

जयदेव और विद्यापति से श्रृंगारित हिन्दी की गीत परम्परा भक्तिकाल में सूर, मीरा, तुलसी, और कबीर आदि से विषय वैविध्य पा कर फलती रही और आधुनिक काल में विकास के अधिकाधिक अवसर सहेज कर शीर्ष बन कर रह गई। भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद तथा इसके समानान्तर चलती स्वच्छन्द प्रगतिशील धारा के अर्न्तगत मैथिलीशरण गुप्त, निराला, महादेवी, दिनकर, बच्चन, अंचल, सुमन, नरेन्द्र शर्मा, नीरज आदि ने गीत की अनेकानेक आभूषणों से अलंकृत किया और श्रृंगाार तक सीमित उसकी झंकार समय तथा परिस्थिति के अनुसार नई चेतना को आवृत करती नित नये नव रूप में नये राग से युक्त होती है।

मानव के हृदय में चेतना के संयोग से जब रागात्मक वृति का संस्पर्श हुआ होगा, तभी उसे भावों के उन्मेष की शक्ति प्राप्त हुई होगी और वे अधरों पर थिरकने के लिए मचल उठे होंगें, जिससे गीत का जन्म हो गया होगा। अतएव गीतिकाव्य को किसी का प्रभाव या किसी से उधार ली हुई वस्तु मानना सर्वथा हास्यास्पद है। अन्तर का उद्वेलन ही तो गीतिकाव्य का मुख्य आधार है। इसी कारण गीतिकाव्य में व्यक्तिगत अनुभूति का प्राधान्य होता है, जो तीव्र आवेग के साथ एकान्विति धारण करती हुई संगीत की तरलता के साथ अभिव्यक्ति प्राप्त करती हैं।

१.९ गीतिकाव्य के प्रमुख तत्व :

- ✤ आत्मपरकता या वैयक्तिकता अथवा आत्माभिव्यंजना
- ✤ गेयता या संगीतात्मकता
- ✤ भावान्विति अथवा एक ही अनुभूति की अभिव्यक्ति
- ✤ अनुभूति की तीव्रता
- ✤ संक्षिप्तता
- ✤ ललित भाषा

गीतिकाव्य के स्वरुप को समझने के लिए इन तत्वों पर विचार करना आवश्यक है।

१. **आत्मपरकता या आत्माभिव्यंजना :** स्वानुभूति अथवा आत्मानुभूति गीति काव्य का प्राण है। गीतिकार जब आत्मकेन्द्रित होकर भाव–विभोर होता है, तब उसका हृदय गीति के रूप में रसित होकर जनमानस को आन्दोलित कर देता है वह भाव चाहे प्रेम का हो, चाहे भक्ति का, चाहे आह्लाद का हो, चाहे वेदना का समान रुप से तन्मयता उसमें अपेक्षित है। कवि का निजी भाव उसकी प्रतिभा का प्रसाद पाकर सभी का भाव बन जाता है। जीवन की जिन परिस्थितियों का अनुभव कवि को होता है, वैसा ही अनुभव पाठको को होता है। अन्तर केवल इतना है कि कवि में उसे अभिव्यक्ति देने की क्षमता होती है। रागाात्मक वृति की इस समानता के कारण वैयक्तिकता साधारणीकृत हो जाती है और कवि की अनुभूति को समष्टिगत बना देती हैं। इसी से वह केवल कवि की भावना नहीं होती, सभी की भावना हो जाती है। महादेवी वर्मा इस आत्मानुभूति के विषय में कहती है कि – गीत यदि दूसरे का इतिहास न कहकर वैयक्तिक सुख–दुख ध्वनित कर सके, तो उसकी मार्मिकता विस्मय की वस्तु बन जाती है, इसमें सन्देह नहीं। आचार्य शुक्ल भी केवल वैयक्तिक अनुभूति की अभिव्यक्ति को कौतुक मात्र मानते है, काव्य नहीं। यदि यह काव्य या गीतिकाव्य है, तो निश्चय ही उसमें सभी के हृदय को तदनुकूल आन्दोलित करने की शक्ति होगी।

आत्माभिव्यंजना की दृष्टि से **डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन** ने गीतिकाव्य को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है– बााधित, आरोपित और शुद्ध। बााधित के अन्तर्गत गीतों के उस स्वरुप को लिया गया है, जिसमें संगीत और पदावली का सौन्दर्य गीत के अनुकूल होते हुए भी उसमें किसी अन्तर्भावव्यंजक स्वरुप का अभाव है अथवा अतिअलौकिकता के समावेश के कारण रसपरिपाक में बाधा पडती है। ऐसे गीत अधिकांशत: रुप वर्णन आदि के अलंकार बहुल स्वरुपों में पाये जाते है। आरोपित के अन्तर्गत उन

गीतों को लिया गया है, किन्तु वे कथा प्रसंग के अंग होने के कारण स्वयं रचनाकार की अनुभूति की व्यंजना नहीं करते, वरन् किसी माध्यम द्वारा व्यंजित किये जाते है। शुद्ध गीति काव्य की संज्ञा उन अर्न्तवादी उद्‌गारों को प्रदान की गई है, जो स्वयं रचनाकार की व्यक्तिगत विह्लता की व्यंजना करते हैं और जिनमें अलौकिक भावभूमि पर आकर पूर्णत: सहृदय संवेद्य हो जाता है।

वस्तुत: आत्माभिव्यक्ति की दृष्टि से शुद्ध गीति काव्य ही अधिक मर्मस्पर्शी और अन्तर को आन्दोलित करने वाला होता है। सूर, तुलसी, मीरा इत्यादि भक्त कवियों के आत्मनिवेदन परक पद इसी कोटि में आते हैं। आधुनिक रहस्यवादी कवियों के गीति काव्य में अंह भाव की प्रधानता होने से उतम पुरुष में ही कवि अपनी भावना की अभिव्यक्ति करता है। तुलसी की इस उक्ति में सभी भक्त हृदयों की दीनता का आभास मिलता हैं–

माधव मो समान जग माँही

सब विधि हीन, मलीन, दीन अति, लीन विषय कोउ नाहीं।

विनयपत्रिका

२. गेयता या संगीतात्मकता : संगीतात्मकता या लयात्मक विधान गीत के स्वरूप को निर्धारित करता है। गीति काव्य हृदयतंत्री का स्वाभाविक उद्रेक है, अतएव गेयता उसका अनिवार्य तत्व है, पाश्चात्य आलोचक **एडगर एलिन पो** तो काव्य मात्र के लिए गेयता या संगीत को आवश्यक मानता है. उसने लिखा है – **' म्यूजिक, ह्वैन कम्बाइण्ड विद ए लैजरेबिल आउडिया इज पोइट्री।'** अर्थात संगीत, जब आनन्दमय विचारों से संयुक्त होता है, तब वह काव्य कहलाता हैं। गीति काव्य के लिए यह आवश्यक नहीं कि उसमें शास्त्रीय संगीत के लिए आग्रह हो, हृदय के तारों की नैसर्गिक झंकृति ही ऐसा स्वर विधान करती है कि वह स्वत: ही गेय हो जाता है. काव्य में अभिव्यंजना हेतु शब्द साधना अपेक्षित है, किन्तु गीतिकाव्य में शब्द साधना के साथ–साथ स्वर साधना भी अनिवार्य है। संगीत में केवल आरोह–अवरोह के द्वारा भावानुभूति कराई जा सकती है, किन्तु गीति काव्य में संगीत के स्वर–माधुर्य के साथ–साथ अर्थ–गाम्भीर्य का भी संतुलित समन्वय अपेक्षित है। भक्त कवियों के उद्गार स्वर–साधना का संगम पाकर उत्कृष्ट गीतिकाव्य बन गये. जहाँ शास्त्रीय संगीत को गीतिकाव्य का आधार बनाया जाता है, वहाँ भावों और कालों के अनुरुप ही रागों का विधान किया जाता है। जैसे तुलसी ने ही रामजन्मोत्सव का वर्णन असावरी और जैतश्री में, रूप वर्णन कान्हरा और केदार में, भक्ति एवं करुणा को सोरठा में, विरह वेदना को विलावल और धनाश्री रागों में व्यक्त किया है।

हिन्दी में गीति काव्य और प्रगीत काव्य एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते है, किन्तु संगीतात्मकता के आधार पर डॉ. आशा किशोर दोनों को भिन्न मानती है, उनका मत है – ' गीतिकाव्य में शास्त्रीय संगीत का आधार होता है। प्रगीत का सांगीतिक आधार शब्दों की योजना पर निर्भर होता है. गीतिकाव्य में आन्तरिक संगीत के साथ ही शास्त्रीय प्रणाली पर राग–रागनियों का संयोजन होता है। गीतकाव्य प्रगीतात्मक होता है, पर सभी प्रगीत गीतिकाव्य नहीं है. गीतिकाव्य की प्रभविष्णुता संगीत के कारण नहीं, संगीतात्मक अभिव्यंजना के कारण होती है। उनके इस मत में अर्न्तविरोध सा प्रतीत होता है। एक वाक्य में वे कहती है कि– गीतिकाव्य में आन्तरिक संगीत के साथ ही शास्त्रीय प्रणाली पर राग–रागनियों का संयोजन होता है और दूसरे वाक्य में वे कहती हैं कि गीतिकाव्य की प्रभविष्णुता संगीत के कारण नहीं। क्या दोनों वाक्यों में अभिव्यक्ति विचार एक ही है? उनका मत भी पूर्णत: गीत व प्रगीत में भेद स्थापित नहीं करता. उनके अनुसार तो महादेवी के भावनात्मक गीत प्रगीत है और निराला की गीतिका के शास्त्रीय संगीतबद्ध गीत गीतिकाव्य हैं, किन्तु ऐसा नहीं है. वस्तुत: गीतिकाव्य में स्वत: स्फूर्त गेयता होती है, शास्त्रीय संगीतीत्मकता अनिवार्य नहीं, हो तो भी वर्ज्य नहीं. स्वर–विधान से गेयता स्वत: ही उत्पन्न हो जाती है.

३. भावान्विति : गीतिकाव्य भाव की प्रवेगपूर्ण स्थिति का परिणाम है। उसमें मंथरता नहीं उत्तेजना होती है। अतएव गीतों मे एक ही भाव अपनी पूर्ण मार्मिकता के साथ अभिव्यक्ति पाता है। प्राय: मूल भाव प्रथम पंक्ति में ही केन्द्रित होता है, शेष गीत में उसी का पल्लवन किया जाता है. भाव की एकनिष्ठता, केन्द्रीयता तथा संतुलित सीमा उसे तीर की भाँति तीखा बना देती है। इसलिए गीतिकाव्य में कथात्मकता एवं इतिवृत के लिए अवकाश नहीं है। प्रबन्ध काव्यों में भी गीति का प्रयोग उसी समय होता है, जब किसी पात्र का कोई भाव अपनी तीव्रता के कारण उद्वेलित होकर स्वरलय में अभिव्यक्त हो उठता है। भाव की एकान्विति से गीतिकाव्य में मार्मिकता और प्रभाव की अचूकता आती है। यथा महादेवी की इस गीत पंक्ति में आत्म–विश्वास, दृढता और अमर आंकाक्षा की अभिव्यक्ति हुई है–

''पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला
और होंगें चरण हारे
अन्य हैं जो लौटते देश शूल को संकल्प सारे
दृढ व्रती निर्माण उन्मद, यह अमरता नापते पद।
बाँध देंगें अंक संसृति से तिमिर में स्वर्ण–बेला।''

४. अनुभूति की तीव्रता : गीतिकाव्य भावावेग की स्वाभाविक परिणिति है। वह हृदय से निकलकर हृदय को प्रभावित करता है। अतएव चिन्तन, मनन, चरित्र-चित्रण, इतिवृत एवं सिद्धान्त निरुपण के लिए उसमें स्थान नहीं है। उसमें भावना का अविरल प्रवार अपेक्षित है। डॉ. नगेन्द्र का विचार है कि- 'जब कभी आत्मा भाव की अग्नि से पिघल कर बहने को हुई है, उसके ताप से वाणी भी द्रवीभूत हो गई है और भाव ने गीत का रूप धारण कर लिया है। अतएव जब-जब हमारे जीवन में भावना का प्राधान्य हुआ है, जब-जब हमारा जीवन दर्शन अधिक व्यक्तिपरक या भावपरक हुआ है, काव्य मे गीति का महत्व बढ गया है। गीत में अनुभूति सम्पन्न तीव्र भाव बोध की मुक्त अभिव्यक्ति निहित है।

हृदय की तरलतम अभिव्यक्ति होते हुए भी गीतिकाव्य बुद्धि और कल्पना से पूर्णतया रहित भी नहीं है। तीव्र अनुभूति अभिव्यक्ति पाकर गीत के रूप में फूट अवश्य पडती है, किन्तु बुद्धि उसे संतुलित और सुनिश्चित रूप देती है और कल्पना उसमें रंग भरती है। मूल-भावना को वैविध्य से सजाने का कार्य कल्पना ही करती है, किन्तु बुद्धि और कल्पना का काम इतना गौण होता है कि भाव-धारा में छिप जाता है। यथा:-

''प्राण मैं हूँ देह केवल, तुम इसी की साँस हो।
दूर हो जितनी बसी, उतनी हृदय के पास हो।
ढो रहा हूँ भार सा बेबस बिरसता को संजोए
श्रान्त मन औ क्लान्त तन ले शान्ति के सब साज खोए
मैं यहाँ हूँ शून्य जैसा दूर जब उच्छ्वास हो।''

शंख और वीणा, पृष्ठ-७६

५. संक्षिप्तता : भावान्विति, प्रभाव की तीव्रता, गेयता एवं सम्प्रेषण के लिए गीत की संक्षिप्तता वांछनीय है. संक्षिप्तता से गीत में निहित अनुभूति अखण्ड एवं प्रभावपूर्ण रहती है। वह श्रोता या पाठक के हृदय पर त्वरित तथा सीधा प्रभाव डालती है। विस्तार से अनुभूति की अखण्डता में व्याघात उपस्थित हो जाता है तथा भावना के विश्रृंखल होने, आवेग के क्षीण होने एवं गेयता में शिथिलता आने की आंशका हो जाती है अत: संक्षिप्तता अपेक्षित है। गीत का सम्बन्ध स्वर से आरोह-अवरोह की सुशमित गति अधिक देर तक बनी रह सकती है। रस की धारा भी संक्षिप्तता में ही वेगवती होती है। इसी से वर्णनात्मक लम्बे गीत गाये नहीं जा सकते।

६. भावानुकूल भाषा : गीतिकाव्य का सम्बन्ध स्वर-साधना से होने के कारण भाषा में भी भावानुकूलता एवं मार्दव अपेक्षित है। हृदय की कोमलतम वृन्तियों से सम्बन्ध होने के कारण भाषा में माधुर्य और लालित्य होना वांछनीय है। गीतिकाव्य में भी भावों का जैसा तरल प्रवाह होता है, उसी के अनुरूप भाषा भी सरस, गतिमती और स्वाभाविक होनी चाहिए। शब्द-मैत्री, चित्रात्मकता, लाक्षणिकता एवं व्यंग्यात्मकता द्वारा भाषा मे भावानुकूलता का समावेश होता है। गीतिकाव्य की भाषा भी भाव के समान स्वत:स्फूर्त होती है, भाव के पीछे भाषा अपने आप प्रवहमान दृष्टिगत होती है। पंत जी के इस गीत में संगीतमय श्शब्दों, सार्थक विशेषणों और ध्वनिमूलक पदों के प्रयोग से प्रात:कालीन सौन्दर्य मुखरित हो उठा है-

''अरुणोदय नव, लोकोदय नव।
रजत झांझ से बजते तरु पल,
स्वर्णिम निर्झर झरते कल-कल,
मसृण तुम्हारे पग-पायल,
यह भू जीवन शोभा का उत्सव।''

रश्मिबंध, पृष्ठ - ७५

निष्कर्षत: हम गीतिकाव्य के स्वरूप का निर्धारण इस प्रकार कर सकते हैं- कवि की सप्तानुभूति से उद्रिक्त तीव्र भाव संयमित एवं संमजित होकर हृदयतंत्री के तारों को ध्वनित करता हुआ संगीत की मधु लहरी में ललित पदावली के माध्यम से अभिव्यक्त होकर काव्य का स्वरूप धारण करता है। मन से संयुक्त होने के कारण गीत सौन्दर्य बोध का चित्रण तीव्र होता है। अपनी स्वच्छन्द एवं लघु प्रकृति के कारण गीत आकार में लघु होते है। गीत की रचना पद्धति भाषा शिल्प के अनुकूल वातावरण से संयुक्त रहती है।

१.१० गीत का युगानुरूप विकास :

गीत की इस अनन्त शक्ति के कारण जब भी सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव की जाती है, मानवीय चेतना को विनाशकारी दिशा से विरत कर कल्याणकारी दिशा में मोडने का प्रयत्न होता है तब गीत का स्वरूप नई करवट बदलता है। समाज का कायाकल्प करने और उसे नई दिशा देने के लिए गीत को नयी भावभूमि, नये आयाम, और यहाँ तक कि नयी शैल्पिक सुन्दरता तक दी जाती है। इस प्रकार मानव समाज की रचना धर्मी विकास-यात्रा में उसके सांस्कृतिक विकास के साथ-साथ साहित्यिक विकास

की यात्रा भी सतत् जारी रहती है। फलत: वैदिक गीत से संस्कृत के लौकिक गीत- पालि अपभ्रंश आदि के गीत- भक्तिकालीन गीत- रीतिकालीन गीत- द्विवेदी युगीन गीत- छायावादी गीत और स्वातन्त्रयोत्तरी गीत का स्वरूप पर्याप्त भिन्न हैं; किन्तु फिर भी गीत के मूल तत्व आत्माभिव्यक्ति, संक्षिप्ति, संगीत आदि सर्वत्र: समान रूप से समुपस्थित है। सार यह है कि गीतिकार की लोकमंगलकारी रचना-चेतना जब भी सामाजिक विषमताओं और विकृत व्यवस्थाओं के विरोध में जनहित साधन के मंगल विधान के लिए स्वर बुलन्द करती हैं तब वह जन भावों के सम्यक् आन्दोलन- उद्वेलन के लिए गीत का पुनर्संस्कार करती है, उसे युगोपयोगी बनाती है। गीत का आश्रय लिये बिना मानवीय संवेदना को नया स्पंदन प्रदान करना अत्यन्त कठिन होता है। अत: गीत नवसृजन का पुरश्चरण होता है।

पद्य साहित्य का गीतमय दीप अपनी समुज्जवल प्रभा से अन्तश्चेतना को निर्मल और निर्भ्रान्त बनाता है। सत्य के अभिज्ञान की शक्ति देता है तथा संघर्ष के लिए ऊर्जा प्रदान करता है। यह कहना गलत होगा कि स्वातन्त्रयोत्तर पद्य साहित्य में प्रभावपूर्ण गीतिकाव्य का नितान्त अभाव है किन्तु इतना अवश्य है कि साहित्य के क्षेत्र में राजनीति द्वारा षडयन्त्र पूर्वक स्थापित पोषित शिविरों ने सत्ता समर्थित प्रचार माध्यमों के बल पर उक्त गीतिकाव्य को वैसे ही ढक दिया गया है जैसे कि कुहासा सूर्य को ढक लेता है। निश्चय ही कुहासे की सघन पर्तो में छिपा सूर्य शक्ति सम्पन्न होने पर भी अपनी ऊष्मा और प्रकाश से जनजीवन को लाभान्वित नहीं कर पाता; वह उपस्थित रहता है पर जनजीवन शीत से ठिठुरने को विवश हो जाता है। यही स्थिति पाश्चात्य साहित्यानुकरण प्रेरित विविध काव्यान्दोलनों के अविचारित आक्रमणों से संत्रस्त स्वातन्त्रयोत्तर गीतिकाव्य की रही है। उसके उपस्थित और जीवन्त रहते हुए भी उसके मरण की घोषणाएँ की गई तथा उसे समीक्षा क्षेत्र में हाशिए पर रखा गया। फलत: साहित्य की लोकमंगलकारी भूमिका बाधित हुई।

जैसे सूर्य अधिक समय तक बादलों के पीछे नहीं रहता और ढकी हुई अग्नि अपने समस्त आवरण भस्म कर प्रकट हो जाती है ठीक वैसे ही स्वातन्त्रयोत्तर युगीन पद्य साहित्य की गीति अभिव्यक्ति भी नयी शक्ति लेकर साहित्य के प्रांगण में पुन: प्रकट हुई है और प्रसन्नता की बात यह है कि गीत के मरण की घोषणा करने वाले भी अब उसकी शक्ति- सत्ता को स्वीकार रहे है। भवानीप्रसाद मिश्र, रामेश्वर शुक्ल अंचल, नरेन्द्र शर्मा, हरिवंशराय बच्चन, रामावतार त्यागी, कुवँर बैचेन आदि असंख्य गीतकारों का कृतित्व सामने आया है और डॉ. सुरेश गौतम, डॉ. रामसनेहीलाल शर्मा 'यायावर' आदि गीतसमीक्षकों ने गीत की सत्ता को साहित्य में पुन: प्रतिष्ठित किया है। गीत की इस पुन: प्रतिष्ठा का वास्तविक आधार

उसकी लोकमंगलकारी रचना चेतना और प्रभावोत्पादिनी शक्ति है। इस विकास–यात्रा में जिन गीतिकारों ने प्रतिकूल परिवेश के आघात–प्रतिघात सहकर भी गीतयात्रा को अविराम गति दी है, वे सब साधुवाद के पात्र है, क्योंकि उन्हीं की निस्पृह एकान्त काव्य साधना का सुफल वर्तमान गीतिकाव्य के विराट–वैभव में प्रत्यक्ष है।

नयी कविता की अधोमुखी धारा के अकविता जैसे प्लावन प्रवाह में हिन्दी कविता के वास्तविक तत्वों को सुरक्षित रखने एवं सवंर्द्धित करने में जिन एकान्त साधकों ने अपना जीवन समर्पित किया है उनमें श्री चन्द्रसेन विराट का महन्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंनें अपनी पाँच दशकों की यात्रा में प्रयत्नपूर्वक हिन्दी गीतिकाव्य को संरक्षित एवं सवंर्द्धित किया है।

१.११ उपसंहार :

प्रासंगिकता और सृजनशीलता, प्रतिबद्धता और अजनबीपन, जादुई और क्रान्तिकारी, यथार्थ और अयथार्थ, तात्कालिक और मिथकीय, सपाट और काव्यात्मक के तनाव में आज के गीत हमारे समय का मार्मिक साक्ष्य बन चुकी है। उसके अनुभव संसार और स्थापत्य का सामना हमें आज की जटिल स्थितियों कें प्रति जागरूक बना सकता है। साहित्य की भूमिका एक अर्थ में साहित्य तक सीमित है और दूसरे अर्थ में उसी की क्षमता के आधार पर उसका अतिक्रमण है।

अनुकरण और अनुभव में फर्क करने की माँग समकालीन काव्य हमसे करता है। यह निर्विवाद है कि वस्तुओं से आज की गीत विधा में व्यक्त और अव्यक्त जो टकराहट पैदा हुई है, वह रचनात्मक समझ और भाषा का एक बिल्कुल नया अनुभव है। यह सिर्फ कुशलता के कारण नहीं–सवेंदनात्मक शिराओं पर एक नये दबाव के कारण भी है।

प्रस्तुत अध्याय में साहित्य के अर्थ एवं स्वरूप को स्पष्ट करते हुए सत्साहित्य को परिभाषित किया गया है। साथ ही साहित्य समाज का दर्पण है इस तथ्य को सार्थकता प्रदान करते हुए समाज एवं साहित्य के पारस्परिक सम्बन्ध को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। साहित्य समाज की चेतना में साँस लेता है। वह समाज का परिधान है, जो जनता के जीवन के सुख–दुख, हर्ष–विषाद, आकर्षण–विकर्षण के ताने–बाने से बुना जाता है। उसमें विशाल मानव जाति की आत्मा का स्पन्दन होता है। वह जीवन की व्याख्या करते हुए उसे जीवनदायी शक्ति प्रदान करता है। साहित्य मानव की अनुभूतियों, भावनाओं और कलाओं का साकार रूप है।

साहित्य सृजनकर्ता साहित्यकार की प्रभावी भूमिका को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। हिन्दी साहित्य के विभाजन, गद्य की अपेक्षा पद्य के वैशिष्ट्य, कविता के उद्‌भव के साथ ही गीति काव्य के स्वरूप, उत्पति एवं विकास को व्याख्यायित करते हुए उसकी परिभाषा एवं विशेषताओं को विस्तार से वर्णित किया गया है।

❑ ❑ ❑

• अध्याय – २ •

छायावादोत्तर हिन्दी गीतों में समकालीन दृष्टिकोण

२.१ प्रस्तावना :

वस्तुत: गीत ने अपने स्वस्थ दृष्टिकोण के बलबूते पर जहाँ एक ओर रूढियों का विरोध किया है, वहीं दूसरी ओर परम्परा के विकास में योगदान देकर आधुनिक युग चेतना के अनेक बिन्दुओं को समर्थता से उकेरा है। किन्तु भाव की महत्ता यहाँ सर्वोपरि रही हैं। इसी के परिवेश में विषय और शिल्प को निश्चित साँचें में न ढालकर ताजे और मुक्त वातावरण में संयुक्त करते हुए गीत ने नवगीत की संज्ञा ग्रहण की। यद्यपि नवगीत नाम नयी कविता की तर्ज पर ही रखा गया था, पर अपनी विशिष्ट प्रकृति के कारण वह निरन्तर सम्पन्न होकर स्थापित होता चला गया। इसलिए भवानीप्रसाद मिश्र को स्वीकार करना पडा कि नयी कविता की अपेक्षा नवगीत का क्षेत्र अधिक सम्पन्न हैं। कविता से गीत की एकात्मकता एवं उसकी सामर्थ्य को व्यंजित करते हुए श्री विद्यानिवास मिश्र लिखते है कि –जहाँ तक आधुनिक बोध, प्रत्यग्र और गहरे अनुभव, अभिव्यक्ति की असंदिगधता और बौद्धिक सम्पृक्तता का प्रश्न है, हिन्दी गीतिकाव्य नई कविता की इन तमाम उपलब्धियों से कृतकृत्य सिद्ध हुआ है और इस प्रकार नई कविता और हिन्दी का इधर का समर्थ गीतिकाव्य समानान्तर नहीं, एक है। नई कविता एक सामान्य संज्ञा हैं, गीत उसका एक विशेष प्रकार।

१. **नव गीत :** वस्तुत: नवयुग की प्रवृतियों को आवृत करना गीत की नव्यतम् उपलब्धि है। आधुनिकता के परिवेश में अपनी निजता को मुखर कर गीत ने नवगीत का रूप ग्रहण किया। यद्यपि नव का विशेषण ग्रहण करना गीत के लिए आवश्यक नहीं था– क्योंकि गीत की प्रवृति ही नवता से सम्बद्ध है, तथापि जब साहित्य की अनेक विधाएँ विशेषत: कविता अनेकानेक आन्दोलनों से प्रभावित होकर अनेक प्रकार की रूप भंगिमा और नाम ग्रहण कर रही थी, तब यदि गीत ने स्वंय को नवगीत बना लिया,तो क्या गलत किया? अस्तु एक ओर जहाँ गीत अपनी परम्परा का पालन निष्ठा से कर रहा है, वहीं प्रगतिशीलता में वह किसी से पीछे नहीं है। उसकी गति हर युग के समानान्तर रही है। बौद्धिकता की रागाात्मक अभिव्यंजना कर उसने आधुनिक जीवन के स्पंदन को मुखर किया है, नये संस्कारों को ग्रहण करती हुई नई जीवन पद्धति को अपने से जोडा है और नये प्रयोगों की चेतना से संयुक्त होकर आधुनिक

जीवन बोध को व्यक्त करने में अपनी भूमिका निबाही है। इस तथ्य के समर्थन में यहाँ कुछ मत देना असंगत नहीं होगा।

डॉ. नन्दकुमार राय ने लिखा है कि– ''नया गीत आधुनिक भाव बोध को अभिव्यक्त करता है, क्योंकि यह नवीन सामाजिक चेतना का सहज परिणाम है।''

श्री शलभ रामसिंह के मत से – आधुनिक जीवन की तमाम विसंगतियों और कुरूपताओं के बीच नये और स्वाभाविक जीवन सम्बन्धों की खोज नये गीत की एक बहुत ही बडी उपलब्धि हैं।

इसी क्रम में पाँच जोड बाँसुरी की भूमिका में **श्री चन्द्रदेव सिंह** ने नवगीत की विशिष्टता तथा व्यापकता निरूपित करते हुए लिखा है कि आज का गीत न तो लोक जीवन से विमुख है, न नागरिक जीवन से उपेक्षित, न तो राष्ट्र की भौगोलिक सीमा में वह बद्ध है, और न अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियों से तटस्थ। नया गीतकार अपने परिवेश तथा अस्तित्व के प्रति व्यापक रूप से सजग व सतर्क हैं। परिवेश और युग जीवन के प्रति उसकी यही सजगता उसके स्वर की नवीनता के लिए उत्तरदायी है।

नवगीत ने परिवर्तित दिशा से पहचान करते हुए प्रयोगों के नये स्वर को स्पर्श किया हैं, किन्तु अपनी जमीन नहीं छोडी हैं। प्रयोगों के अत्यधिक आग्रह के कारण नई कविता कहीं-कहीं हास्यास्पद या विकृति की अवस्था तक पहुँच गई है, किन्तु नवगीत सहज प्राकृत रूप में बने रहे हैं। इसका कारण यही है कि बौद्धिकता का आग्रह नई कविता में अति की सीमा को पार कर गया हैं, जबकि नवगीत ने उस बौद्धिकता को भावना से सम्बद्ध कर एक संतुलन बनाये रखा है। इसलिए नवगीत आधुनिक परिवेश में भी हृदय के निकट महसूस होते हैं, जबकि नई कविता सहज अर्थ-व्यंजना से दूर रहकर प्राय: दिमागी कसरत कराती हैं।

वस्तुत: नवगीत ने जिस सौन्दर्य बोध को खोजा है, उसमें पलायन, विकृति एवं अश्लीलता नहीं है बल्कि एक स्वस्थ आधुनिकता है– जो सामाजिक संचेतना को पूरी संजीदगी से ग्रहण करती हैं और विचार तथा भाव व्यंजना के नये प्रयोगों के माध्यम से सटीक रूप में अभिव्यक्ति करती हैं। रागात्मक संस्पर्श, नवीन जीवन मूल्य और भाव-बोध, शिल्प की मौलिकता और अपनी सनातन ताजगी के साथ नवगीत अपने दायित्वों का बखूबी निर्वाह कर रहा है।

नवगीत के प्रस्थान बिन्दु से लेकर अद्यावधि उसे उत्कर्ष देने वालों में शंभुनाथसिंह, केदारनाथसिंह, धर्मवीर भारती, माहेश्वर तिवारी, ठाकुर प्रसाद सिंह, वीरेन्द्रमिश्र, सोम ठाकुर, उमाकान्त मालवीय, बालस्वरूप राही, ओम प्रभाकर, कुँवर नारायण, रामदरस मिश्र, रमानाथ अवस्थी, नईम, चन्द्रसेन विराट,

अनूप, अप्रशेष आदि प्रमुख गीतकार महत्तवपूर्ण हैं। नवगीत अपने समय की सहज माँग हैं, यह एक चुनौती भी है।

२.२ छायावादी हिन्दी गीतकार :

इस काल में प्रसाद, पंत, महादेवी, निराला, माखनलाल चतुर्वेदी आदि कवियों ने गीत रचना की। निराला ने भाव और अभिव्यंजना की खोज की। उनके गीतों में शब्द, नाद और सौन्दर्य तीनों का अद्भुत समन्वय है। उनकी रचनाओं में सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् के भाव मिलते है। पन्त अभिव्यंजना की शक्ति और सौन्दर्य विशेषकर प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रेमी रहे। पन्त ने विशेषत: सौन्दर्य का ही गान किया। महादेवी ने सत्याधारित करूण रस को आधार बनाकर प्रगीत के क्षेत्र में सर्वाधिक कार्य किया। प्रसाद इतिहास और कल्पना का समन्वय कर नाद शिल्पी के रूप में प्रकट हुए है।

२.३ आधुनिक काल में छायावादोत्तरकाल तक गीत की विकास यात्रा :

अ) आधुनिक काल : जयदेव और विद्यापति से श्रृंगारित हिन्दी की गीत परम्परा भक्तिकाल में सूर, मीरा, तुलसी, और कबीर आदि से विषय वैविध्य पा कर फलती रही और आधुनिक काल में विकास के अधिकाधिक अवसर सहेज कर शीर्ष बन कर रह गई। भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद तथा इसके समानान्तर चलती स्वच्छन्द प्रगतिशील धारा के अर्न्तगत मैथिलीशरण गुप्त, निराला, महादेवी, दिनकर, बच्चन, अंचल, सुमन, नरेन्द्र शशर्मा, नीरज आदि ने गीत को अनेकानेक आभूषणों से अलंकृत किया और श्रृंगार तक सीमित उसकी झंकार समय तथा परिस्थिति के अनुसार नई चेतना को आवृत करती नित नये नव रूप में नये राग से युक्त होती है।

आधुनिक काल का हिन्दी कविता के विकास में विशेष महत्व है। व्यक्ति स्वांतत्रय, अतीत गौरव के प्रति आस्था तथा राष्ट्रीय चेतना अधिक रही है। फलत: जनजागरण का यह काल हिन्दी गीतिकाव्य के प्रसार के लिए अधिक उपयुक्त है। भारतेन्दु ने एक ओर विद्यापति, चण्डीदास, सूर, तुलसी की परम्परा में राधा–कृष्ण के आलम्बन लेकर ब्रजभाषा में भक्तिपूर्ण स्फुट पद लिखे है, तो दूसरी ओर राष्ट्रीयपरक कविताओं की रचना की है। इस युग के लेखकों ने गद्य लेखन जैसे महत्वपूर्ण काव्य का शुभारम्भ किया। इस काल में राष्ट्रीयगीत परम्परा श्रीधर पाठक ने प्रारम्भ की।

ब) द्विवेदी युग : यह देश प्रेम, नीतिपरक, आचारशीलता, इतिवृतात्मकता और भाषा के परिष्कार का युग रहा है। इस युग की कविता, समाज सेवा, पुरातन प्रेम, समाज सुधार जैसी स्थितियों से

पूर्ण रहा है। नाथूराम और शंकर शर्मा की पंच पुकार, गयाप्रयाद शुक्ल सनेही के अंहिसा संग्राम, मैथिलीशरण गुप्त के सुकवि कीर्तन, रामचरित उपाध्याय के कन्हैया, माधव श्शुक्ल तथा मुकुट बिहारी पाण्डेय की स्फुट कविताएँ इसके उदाहरण है। किन्तु इस युग में विषय की एकरूपता, अभिव्यक्ति की स्थूलता, वर्णनात्मकता और भाषा की रूक्षता के कारण इसमें भावप्रवणता की कमी रही हैं इसलिए इन्हें पद्य निबन्ध कहा जाता है।

स) छायावादी काल : कला की दृष्टि से विचार करने पर छायावादी काव्य की विशेषता चित्रमूलक ध्वनिपूर्ण भाषा, स्वछन्द छन्द योजना, लक्षणा मूलक भाषा, सुकुमार कल्पना, मूर्त का अमूर्त और अमूर्त का मूर्त विधान, विशेषण विपर्यय, समासोक्ति और अर्थान्तर न्यास की शैली आदि है।

यह काल द्विवेदी युगीन विकास की कडी न होकर तत्कालीन सामाजिक प्रभावों से उत्पन्न एक अलग काव्य संस्कार है। वैयक्तिकता, आत्मलीनता, रहस्यवाद, के साथ-साथ स्पष्ट सामाजिकता और मानववाद के दर्शन छायावादी कविता में होते है। छायावाद पलायन का वाद नहीं है, बल्कि नैसर्गिक जीवन की आंकाक्षा को जीता है। इसकी गीतिश्शैली पर एक ओर लावनी, कजली, दादरा, वीरहा जैसे लोकगीतों का प्रभाव है तो दूसरी ओर इंग्लैण्ड के रोमांस युग की लिरिक शैली की छाप है।

ड) छायावादोत्तर काल : निराला और पंत जैसे कवियों ने संक्रमण काल में भी खुद को सक्रिय रखा। वे बदलते समय की माँग को पहचानकर उसी रास्ते चलने लगे। छायावादी शैली को आगे तक विकसित करने में प्रमुख रूप से जानकी वल्लभ शास्त्री, विद्यावती कोकिल, सुमित्राकुमारी सिन्हा, गोपाल सिंह नेपाली आदि हैं।

आलोचकों का मानना है कि छायावादी कविता का शिल्प पश्चिमी प्रभाव से युक्त था। १९३६ के बाद छायावादी कविता के रोमानी तेवर लुप्त हो गए और प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। प्रगतिशील चेतना जीवन के यथार्थ से जुडी; पर धीरे-धीरे प्रगतिशील चेतना अरविन्द दर्शन के प्रभाव एवं भक्तिवादी दृष्टिकोण और छायावादी लाक्षणिकता से ऊबने लगी। वे कला और साहित्य को पुराने साँचें से निकालकर नये रूप में ढालना चाहते थे।

२.४ छायावादी हिन्दी गीतों की विशिष्टताएँ :

१. वैयक्तिकता
२. प्रकृति सौन्दर्य और प्रेम की व्यंजना

३. श्रृंगाारिकता

४. रहस्यानुभूति

५. वेदना और करूणा की विवृति

६. मानवतावादी दृष्टिकोण

७. नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोण

८. स्वच्छंदतावाद

९. देश प्रेम एवं राष्ट्रीय भावना

१०. प्रतीकात्मकता

११. चित्रात्मक भाषा और लाक्षणिक पदावली

१२. गेयता

१३. अंलकार विधान

१४. स्निग्धता एवं सरसता

निष्कर्षत: भावाभिव्यक्ति, भाषा की तरलता, सूक्ष्मता और अभिव्यक्ति क्षमता की तमाम ऊँचाइयाँ, विस्तार, गहराइयाँ स्पर्शकर और उन्हें लाँघते हुए छायावादी गीत निरन्तर आगे बढते हुए छायावादी सोच विचारों के आन्दोलन, कथ्य और शिल्प के अनेकानेक आयामों और मापदण्डों को स्थापित करते चले गये। इस काल के गीतों ने समय का व्यापक कैनवास, स्थल के विशिष्ट मकाम गीत विधा को प्रदान किया।

विषय विस्तार के भय से यहाँ इन विशेषताओं का विस्तृत रूप से विवेचन नहीं किया गया है।

२.५ समकालीनता से तात्पर्य :

जैनेन्द्र केमार का कथन है कि-'' समकालीन साहित्य वह है, जो साहित्य न केवल उस युग मे पथ-निर्देश एवं पथ प्रकाशित करता है, जब वह रचा गया, अपितु वह युगों-युगों तक तत्सम् कार्यनिर्देश करता रहे, यही उसकी उपादेयता है। कोई भी रचना अपने रचना काल से लेकर चिरकाल तक प्रकाश का स्त्रोत बना रहे, यही उसकी समकालीनता होगी।'' इसके लिए आवश्यक है कि कवि लोक को सामाजिक, राजनैतिक दृष्टि से जागृत कर एक संतुलित समाज की स्थापना का मार्ग-निर्देश करे।

समसामयिक चिन्तन द्वारा परिवर्तनशील जीवन, समाज एवं प्रकृति और तदनुरूप सृजित साहित्य की ऊर्जाशक्ति का जीवन्त स्रोत है। रचनाकार लोकजीवन से जुडकर ही समाज सापेक्ष साहित्य का प्रणयन

कर सकता है। गीत में लोक चेतना आम जनता की पक्षधर होकर विकसित होती है। यह विकास लोक –जीवन से लोक–चेतना और लोक–चेतना से लोककल्याण एवं लोकजागरण की निश्चित दिशा की ओर होता है। रचनाकार को लोक–चेतना के निर्वहन के लिए समकालीन सामाजिक राजनीतिक, विसंगतियों से निस्तार पाने हेतु कविता में लोककल्याण की अभिव्यक्ति की आवश्यकता रहती है। इसमें जनविरोधी भावनाओं को अनावृत्त करना, आम आदमी के जीवन की असंगतियो का चित्रण, रूढियों एवं निरर्थक मान्यताओं का खण्डन करते हुए विपक्षी सत्ता द्वारा किये जा रहे अन्याय के विरूद्व लोकशक्ति को संगठित एवं जागृत करना कवि का आवश्यक कर्म बन गया है। कवि लोक को सामाजिक, राजनैतिक दृष्टि से जागृत कर एक संतुलित समाज की स्थापना की बात करता है।

२.६ आधुनिकता बनाम समसामयिकता :

सम्प्रति साहित्य की दृष्टि से सामान्यत: आधुनिकता बनाम समसामयिकता में भिन्नत्व प्रतिभासित नहीं होता. विगत साहित्य को समसामयिकता के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है, क्योंकि साहित्यकार अपने युग की सृष्टि होता हैं एवं उसके साहित्य में उसका समसामयिक युग किसी न किसी रूप में प्रतिबिम्बित अवश्य होता है। अपने युग से वह कितना ही उदासीन एवं निरपेक्ष रहने का प्रयास करे, किन्तु वह उससे सर्वथा असम्पृक्त नहीं रह सकता; क्योंकि वह अपने युग के वायुमण्डल में साँस लेता है, उसका सामयिक वातावरण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उसकी हृदयतंत्री के तारों को झंकृत करता है, उससे जो स्वर निकलता है, वही उसका साहित्य होता है। अत: उसमें समसामयिकता अनिवार्य रूप से विद्यमान रहती है। जिस युग में कबीर का जन्म हुआ, उस युग में बिहारी नहीं हो सकते थे तथा जिस युग में भारतेन्दु का अवतरण हुआ था; उस युग में पन्त की कल्पना कला अपना अभिनय नहीं व्यक्त कर सकती थी। समय अपनी विभूति को अपने गोद में जन्म लेने वाली प्रतिभा के माध्यम से स्वत: ही उद्‌भासित कर देता है। फलत: प्रागैतिहासिक युग के कथानक में भी साहित्यकार का युग झांकता प्रतीत होता है। अपने आराध्य राम की भक्ति में आकण्ठ मग्न तुलसी के रामचरितमानस में भी मुगलकालीन भारत की स्पष्ट झलक मिलती है तथा खण्ड प्रलय के अनन्तर मानव की अभिनव सृष्टि के निर्माण से सम्बन्धित कथानक पर आधारित कामायनी में भी प्रसाद का युग स्पन्दित होता हुआ दृष्टिगत होता है। यही नही अपितु उसमें तो प्रज्ञाचक्षु आलोचक द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद एवं साम्यवादी विचारधारा का प्रखर उन्मेष भी देखने लगे है। अतएव साहित्य में समसामयिकता स्वत:सिद्ध है।

किन्तु आज समसामयिकता और आधुनिकता को एक ही अर्थ का वाचक नहीं माना जाता हैं। समसामयिकता में नूतन युग पुरातनता के निर्मोक में झांकता हुआ प्रतीत होता है, उसमें यदि नवयुग का स्पन्दन है भी, तो वह जरा जर्जरित सा लगता है, उसमें यदि नवीन भावनायें और विचारधारायें प्रवहमान है भी तो उनमें गतानुगत धारा के मिश्रण का आभास मिलता हैं। उसकी अभिव्यक्ति का स्वर यदि युग की प्रतिध्वनि को अपने में समेटे हुए है, तो भी उसमें आरोह से अवरोह की ओर उन्मुख जैसी गति सुनाई पडती है। उससे जिस अर्थ की व्यंजना होती है, वह वहीं है, जो पहले थी और सम्भवत: आगे भी रहेगी।

यन्त्रों द्वारा निर्मित उपकरणों से प्राप्त भौतिक वैभव एवं ऐन्द्रिय सुखों की उपलब्धि की स्पर्धा में हम आत्मकेन्द्रित हो गये है। येन-केन-प्रकारेण अर्थ संचित कर भोग के साधनों को जुटाना हमारे जीवन का परम लक्ष्य बन गया हैं. फलत: समाज से हमारा उतना ही सम्बन्ध रह गया है, जितने से हमारे लक्ष्य की पूर्ति में सहयोग मिलता है. केवल व्यक्तियों में ही नहीं अपितु वैश्विक राष्ट्रों में भी यह धारणा बलवती हो रही है। परिणामस्वरूप जहाँ विज्ञान द्वीपों अपितु ग्रहों की दूरी को भी कम कर रहा है, वहीं दूसरी ओर व्यक्तियों के मध्य दूरी को विस्तार दे रहा है. परस्पर अविश्वास, सन्देह, आशंका, भय एवं शोषण की प्रवृति बल पकड रही है। फलत: संत्रास, कुण्ठा, अवसाद, आत्मपीडन, निराशा, एकाकीपन जैसी भावनायें बलवती होती जा रही है। एक तरफ स्वतन्त्रता के नाम पर मनमानी, भोगलिप्सा तो दूसरी ओर भूख से छटपटाता वर्ग है; इन दोनों के मध्य है आज की दिशाहीन एवं लक्ष्यहीन युवा पीढी; जिसमें है भटकाव, अनास्था, ऊब, उदासी। इनकी अभिव्यक्ति वह उच्छृंखलता के माध्यम से करता है। समाज की इस विषमता को, यथातथ्य रूप से नग्न करके चित्रित करना आधुनिकता है।

आधुनिकता : आधुनिकता को परिभाषा में नहीं बाँधा जा सकता, आधुनिक बोध सबके अपने अपने है। प्रत्येक व्यक्ति एक द्वीप है, आधुनिकता रूपी नदी का। आधुनिकता में नयी गतिविधियों से समाज के नये जीवन मूल्य सृष्ट होते है। लेकिन समय विशेष के कारण आधुनिकता पुरातन हो जाती है इसलिए उसे निरन्तरता प्रदान करने के लिए सतत संशोधन की आवश्यकता है। सरिता के ठहरे हुए जल के समान स्थिर आधुनिकता दूषित हो जाती है। बीता हुआ कल यदि तात्कालिकपूर्ति के लिए समसामयिक हो सकता है, पर आधुनिक नहीं। आधुनिकता की कुछ अनिवार्य शर्ते है, पर समकालीनता की नहीं। इसलिए हर समकालीन आधुनिक भी हो, ये जरूरी नहीं पर उसे समकालिक होना आवश्यक है। कबीर अपने समय में आधुनिक भी थे और समकालीन भी पर आज वे पूरी तरह समकालीन होते हुए भी

आधुनिक नहीं है। यह तकनीकी अन्तर बहुत महीन है जैसे अभिमान और स्वाभिमान के बीच सूक्ष्म किन्तु गहरा अन्तर है।

समकालीन होना अपने युग सन्दर्भो में प्रासंगिक होना है। इसके साथ ही जो आधुनिक मूल्यों से भी जुडा हो वही समकालीन कविता का वाहक हो सकता है। समकालीनता ही वह तत्व है जिसके द्वारा आधुनिकता रूपाकार ग्रहण करती है और इस रूप में समकालीनता में परम्परा की जीवन्त धारा से विच्छेद नहीं होता। बल्कि हम उसका नवीनीकरण कर समृद्ध एवं विकसित करते है।'' आलोक भट्टाचार्या का नागपूर में राष्ट्रीय संगोष्ठी में दिया गया वक्तव्य।

आधुनिकता मूर्खता, अज्ञान, रूढि और अंधविश्वास का विरोध करती है। परम्परा के सचेतन अनुकूलीकरण और अपनाव से नहीं, यदि पाश्चात्यीकरण को कोई आधुनिक मानते है; तो वह पतित भूल कर रहा है- पाश्चात्य से भी सचेतन ज्ञान को अपनाना है, उसकी नकल को नहीं। छिन्न मूल्य आधुनिकता नहीं है।समकालीन बोध जुडाव की कविता है। अत: परम्परा जो रूढि बन चुकी है वह त्याज्य हैं हर हाल में, पर उसे नया रूप देकर आधुनिक बनाया जा सकता है।

विजयेन्द्र ने लिखा है कि - ''समकालीनता का अर्थ भौतिक रूप से जो घटित हो रहा है। मात्र उतना नहीं है बल्कि जो कुछ क्षतिग्रस्त है। उनकी पुर्नरचना की सृजनशील चेष्टाएँ और जीवन को समोन्नत तथा सुन्दर एवं मनोहारी बनाने की परिकल्पना ही उसी समकालीनता का एक महत्वपूर्ण पक्ष है।

आधुनिकता वस्तुत: अनिश्चय की भूमिका पर खडी हैं. वह एक विचार प्रक्रिया है, जिसके मूल में मुक्ति की बदलती भावना है- व्यक्ति की मुक्ति की अर्थात् स्वच्छन्दता एवं स्वेच्छाचारिता से उन्मुक्त विलास की कामना, विचार के क्षेत्र में वह प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों से, नैतिक एवं श्शास्त्रीय सिद्धान्तों से, धर्मिक विधि निषेधों से मुक्त होकर नवयुग की माँग के अनुरूप मूल्यहीन मूल्यों को, मानहीन मानों को तथा मनमाने विचारों को वहन करती हुई चलती है। व्यवहार के क्षेत्र में आधुनिकता प्राचीन संस्कारों, पुरातन परम्पराओं, पुरानी रूढियों तथा आचार-व्यवहार से मुक्ति की घोषणा करती है. आधुनिकता तो स्मृति एवं अतीत से भी मुक्ति चाहती है. उसके समक्ष तो केवल वही क्षण है, जो जिया जा रहा हैं। उसके बीतने पर उसका महत्व समाप्त और आगत क्षण मूल्यवान हो जाता है। फलत: आधुनिकता में क्षणवाद की प्रतिष्ठा है। अभिव्यक्ति के क्षेत्र में आधुनिकता को पुरातन काव्य रूप, प्रचलित छन्द, भाषा, परिष्कृत शैली शिल्प तथा अंलकृति के बन्धन स्वीकार्य नहीं है। फलत: तुकहीनता, गद्य-पद्य के विधानों से

निस्संगता, उलझी हुई भाषा, अपने नितान्त व्यक्तिगत प्रतीक आदि आधुनिकता के लक्षण है। सारांश यह है कि भाव, विचार, व्यवहार एवं अभिव्यक्ति से मुक्ति आधुनिकता है। उसमें नवीनता के लिए तीव्र छटपटाहट है।

आधुनिकता में विद्रोह का स्वर अत्यन्त मुखर है, किन्तु यह केवल विघटनात्मक ही नहीं अपितु सृजनात्मक भी है। इससे हमारे ज्ञान के क्षितिज का विस्तार हुआ है, हमें नव्य आलोक की प्राप्ति हुई है। उसने मानव की सफलता की घोषणा करते हुए जीवन के प्रति निष्ठा उत्पन्न की है। विकास के लिए साहस, उत्साह एवं आशा की ज्योति प्रकीर्ण की है।

२.७ गीत और नव परिवर्तन :

सन १९६० के आसपास गीत ने नये बौद्धिक परिवेश को भी अपनी भावात्मक सीमा में समेटना शुरू कर दिया। यद्यपि परिवर्तन के ये चिन्ह आधुनिक काल के प्रारम्भिक चरण से ही दृष्टिगत होने लगे थे, तथापि सन् १९६० के आसपास उसके बदले हुए अप्रत्याशित रूप ने कई विशिष्टों को चौंका सा दिया। वास्तव में हुआ यह कि आदिकाल से ही लोकप्रिय इस विधा ने अन्य हिन्दी विधाओं की तुलना में अपना स्थान शीर्ष ही बनाये रखा। परिणामस्वरुप अनेक विरोधों को सहते हुए विविध आवर्तो में डूबने-उतरने के बाद भी गीत की लोकप्रियता में नैरन्तर्य बना रहा। इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए गीत-एक की भूमिका में यह स्पष्ट किया गया है कि -गीतों का युग समाप्त हो चुका है; यह नारा लगा था कुछ लोगों की तरफ से बाकायदा कुछ आवाजों की शह पाकर। न गीत मरा, न ही उसका युग समाप्त हुआ। हाँ इन नारों के जन्मदाता इन नारों की असमय मौत पर तिलमिलाते हुए आज नये नारों की तलाश अवश्य कर रहे है। किन्तु जब तक सृष्टि में सनातन मनुष्य जीवित है, तब तक काव्य में गीत भी रहेगा।''

यह कथन कोरी भावुकता नहीं है, एक सत्य है - जिसे झुठलाना संभव नहीं है। यदि गीत ने नये भावबोध और नयी अभिव्यक्ति को स्वीकारा है, तो यह सम्पन्नता तो गीत की सामर्थ्य ही व्यक्त करती है कि उसने उदारता के साथ नये युग को अंगीकार किया है। उसने यह सिद्ध किया है कि आधुनिक बौद्धिक युग के प्रभावों को भी वह अपने भावाात्मा धरातल से अभिव्यक्त कर सकती है। अतएव बौद्धिक युग में गीत की आवश्यकता और भी अधिक प्रतीत होती है। **आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी** का मन्तव्य इसी मत की पुष्टि करता है। उन्होने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि - लोग कहते है कि गीत हृदय की वस्तु है, जिसका सामंजस्य आधुनिक बुद्धिवादी प्रवृतियों से नही हो सकती। परन्तु तथ्य यह है कि युगीन जीवन

में जितनी ही बौद्धिकता और भौतिकता बढेगी; हृदय की पुकार की, गीतों के प्रणयन की उतनी ही अधिक आवश्यकता होगी।

२.८ आज का नवगीत :

''पंख होते है समय के
एक फुनगी पर, कहां वह
आज तक ठहरा
और
बहुत कठिन
संवाद समय से
शब्द सभी पथराए''

राजेन्द्र गौतम के नवगीतों की ये पंक्तियां सहज रूप से समय संज्ञा का परिचय मानव मस्तिष्क से कराने में पूरी तरह सक्षम लगती है। किसी भी क्षेत्र में, समय का अपना विशेष महत्व होता है। फिर, साहित्य का क्षेत्र उससे कैसे अलग रह सकता था। साहित्य की सभी विधाओं पर इसका प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। परन्तु जब हम गीत विधा की बात करते है तो एक पल को या यूँ कह लें कि प्रथमत: साहित्य का अभिप्राय: काव्य या कविता ही प्रतीत होता है। यह सब कुछ गीत के सुसंस्कृत संस्कारों के कारण है। अन्य विधाओं की अपेक्षा साहित्य में पद्यस्वरूप को ही अधिक महत्व एवं मान्यता मिली है। अपने उद्‌भव से अधुनातन तक की यात्रा करते हुए गीतिकाव्य की रसात्मकता और संवेदनशीलता ही उसके विकास का आधार है।समय के बदलाव ने उसे समकालीन व्यवस्थाओं के अनूकूल सोच में ढालने का अवसर दिया हैं। गीत का यही संस्करण हमारे सामने नवगीत का विलक्षण प्रतिभावान संकल्प लेकर उपस्थित हुआ है।

नवगीत कुमार रवीन्द्र के कथन के अनुसार – आज का हिन्दी गीत वर्तमान स्थिति से रू–ब–रू होने, उसकी सारस्वत और औपनिषेदिक अस्मिता को कायम रखने की क्रंातिकारी प्रक्रिया से गुजर रहा है। यही उसकी समकालीनता है। नवगीत को लगातार समकालीन यथार्थो से तथा समकालीन तथ्यों से दो–चार होना पडा है। यही नवगीत का एक सम्पन्न और सक्षम अन्तर्सवाद का संप्रेषणीय माध्यम निर्मित करता है।

बौद्धिकता की रागात्मक अभिव्यंजना कर गीत ने आधुनिक जीवन के स्पंदन को मुखर किया है। नये संस्कारों को ग्रहण करते हुए नई जीवन पद्धति को स्वयं से जोडा है और नये प्रयोंगों की चेतना से संयुक्त होकर आधुनिक जीवन बोध को व्यक्त करने में अपनी अहम् भूमिका निभाई है।

वास्तव में कविता के पाँच रूप हैं – कथात्मक, विचारात्मक, वर्णनात्मक, भावनात्मक तथा चित्रात्मक। इनमें से कविता के भावनात्मक रूप में प्रगति और गीत भी सम्मिलित है।

प्रगीत को अंग्रेजी में लिरिक कहते है। प्राचीन काल में यूनान में प्रगीत शब्द लायर या तन्त्री के साथ गाई जाने वाली कविता को कहा जाता था। यह कविता समवेत और एकाकी रूप में गाई जाती थी। कालान्तर में प्रायः छोटी और व्यक्तिगत कविताओं को प्रगीत कहा जाने लगा। भावनात्मक और छोटा होना प्रगीत का प्रमुख गुण है। प्रबन्ध की ओर झुकाव होने पर प्रगीतों में व्यक्तियों एवं घटनाओं की चर्चा भी आम हो गई है। निराला की 'राम की शक्ति पूजा' और 'महाराज शिवाजी का पत्र' इसी श्रेणी की रचनाएँ है।

जबकि गीत की रचना में अवसर, रस, गति और राग इन चार तत्वों की अनिवार्यता है। निराला का सरोज स्मृति हिन्दी काव्य जगत् का सर्वश्रेष्ठ शोक गीत है।

वस्तुत: गीत ने अपने स्वस्थ दृष्टिकोण के बलबूते जहाँ एक ओर रूढियों का विरोध किया है, वहीं दूसरी ओर परम्परा के विकास में योगदान देकर आधुनिक युग चेतना के अनेक बिन्दुओं को सामर्थ्य से उकेरा है। किन्तु भाव की महत्ता यहाँ भी सर्वोपरि रही हैं। इसी के परिवेश में विषय और शिल्प को निश्चित साँचें में न ढालकर ताजें और मुक्त वातावरण से संयुक्त करके गीत ने नवगीत की संज्ञा ग्रहण की।

श्री विद्यानिवास मिश्र ने गीत की सामर्थ्य को प्रकट करते हुए कविता से उसकी एकात्मकता व्यंजित करते हुए लिखा है कि – ''जहाँ तक आधुनिक बोध, प्रत्यग्र और गहरे अनुभव, अभिव्यक्ति की असन्दिग्धता और बौद्धिक सम्पृक्तता का प्रश्न है, हिन्दी गीतिकाव्य नई कविता की इन तमाम उपलब्धियों से कृतकृत्य सिद्ध हुआ है और इस प्रकार नई कविता और हिन्दी का इधर का समर्थ गीतिकाव्य समानान्तर नहीं, एक विशिष्ट प्रतिभा है। नई कविता एक सामान्य संज्ञा है, गीत उसका एक विशेष प्रकार.''

लगभग ६० वर्षो की आयु वाले नवगीत के लिए वर्तमान समय अपनी संवेदना को जीवंत रखने की चुनौतियों का समय हैं। मानवीय अस्मिता के लिए लडने का उसका संकल्प, सामाजिक यथार्थ के संदर्भ

में उसके युगीन बोध, लोक सम्पृक्ति, वर्तमान सभ्यता की विसंगतियाँ, मानव मूल्यों का परिकलन और नवीनता के द्वार खटखटाती हुई जिजीविषा की नई उडान तथा नवोन्मेष संभावनाएं, निश्चित रूप से उसके आग्रह को और अधिक सशक्त तथा कारगर बनाने के प्रयोजन है। सामाजिक सरोकारों को निभाते-निभाते संत्रास, त्रासदी, ऊहापोह, आपाधापी, मशीनीकरण, रिश्तों की टूटन-क्षरण के बीच से गुजर रहा है। वह आज की सामाजिक स्थितियों में परिवारों की संक्षिप्तता के साथ-साथ उनके एकल होने तक की दशा का प्रत्यक्षदर्शी हैं। इसी एकल परिवार का एक उदाहरण रवीन्द्र कुमार के नवगीत में स्पष्ट देखा जा सकता है-

''क्या बतलाएं/ इस घर में बच्चे उदास हैं
घर में सब कुछ है/ फ्रिज, टीवी और कम्प्यूटर
सूना कब से नदी किनारे का पूजाघर
वेबसाइट भी हर बच्चे के लिए खास है
जुडे हुए है सारे कमरे डॉटकाम से
सपने बुक है हर बच्चे के अलग नाम से
मम्मी-पापा के कमरे बस पास-पास है।''

आज के युग में संवाद समाप्त हो चुका है, शब्दों का उपयोग कम होता जा रहा है। समकालीन नवगीत में समय बोध, इतिहास बोध और नवीन विचारशीलता ने उसे अभूतपूर्व बनाया है। गंभीरता प्रदान करते हुए संप्रेषणीय बनाया है। नवगीतकारों की संवेदना आज जीवन के ऊहापोह आपाधापी के प्रति अधिक चिंतित दिखाई पडती हैं। समय के साथ गतिमान रहने वाला नवगीत जिसके बिना कविता का स्थान तय नहीं किया जा सकता, इसी नवगीत पर श्री राम परिहार के विचार है- अभी तक ये तय नहीं हो सका है कि पहला नवगीत किसे माना जाये।

'नवगीत मानव मूल्यों एवं मानवीय एषणा के अन्तर्द्वन्द के फलस्वरूप उत्पन्न जीवन संघर्ष का यर्थाथ रूप तो है ही, प्रतिरोध एवं प्रतिकार में भी सक्षम है।' मधुकर अष्ठाना के इस कथन को ध्यान रखा जाये तो आज समाज में उठने वाले शोर-शराबे दिल दहलाने वाले नवगीत पर, उसकी इच्छाओं पर भी एक प्रकार से वशीकरण का जाल फैला दिखता है, युग बोध का यह दबाव उसे भी प्रतिसंवेदित होने से नहीं रोक पाता।

ऐसे ही परिवेश में जीवन के विविध आयामों की व्याख्या की क्षमता रखने वाले नवगीतकार डॉ. अजय पाठक के सामाजिक विश्लेषण तथा स्पष्टवादिता का एक दृष्टव्य और देखें–

बूढे हुए कबीर / आजकल

ऊंचा सुनते है/आंखों से है साफ झलकती

भीतर की बैचेनी/ हुए अकारथ साखी, दोहे

बिरथा हई रमैनी/ खांस–खांस कर

समरसता की/ चादर बुनते हैं

बाल–मन की दुविधाओं के संदर्भ मे भी गहरी संवेदना रखता, गीता का सांसारिक एवं परिमार्जित रूप नवगीत समय के साथ ही चलकर अगली पीढी को उसके आगे आने वाले समय की आहट से सचेत भी करता चलता है और आगाह भी, ठीक एक कुशल भविष्यवक्ता बनते हुए। सामाजिक चेतना में गहरी पैठ एवं जनसमुदाय से सार्थक संवाद कायम करने वाले सजग गीतकारों के शब्दों की व्यथा में इसे देखा जा सकता है।

प्रगतिशील समय के इस दौर में हम अपनी संस्कृति, सामाजिक स्थितियों को ध्यान में रखते हुए अपनी चेतना और मानसिकता के अनुरूप सृजन में कथ्य, पात्र, संवाद और परिवेश आदि को समाविष्ट करते है। नवगीतकार की सोच में साहित्य धारा सदैव ही सामाजिक विचारधारा और यर्थाथ जीवन के समानांतर बहते है। समाज और साहित्य का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। राजनयिक दायित्वहीनता और अर्थव्यवस्था के स्खलन द्वारा उत्पन्न स्थितियों के चलते नवगीतों में मुहावरों का अधिकाधिक प्रयोग करने वाले समर्थ एवं सम्पन्न नवगीतकार भी परेशान दिखता है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक विघटन के अंतहीन फैलाव एवं तदजनित आधुनिक वातावरण में संवादों की रिक्तता का दंश, नवगीत आज के समय के इस अवसाद का जो चित्र प्रदर्शित करता है, उसकी टीस निर्मल शुक्ल की इन पंक्तियों में प्रतिध्वनित होती है।–

इन बस्तियों के रंग सारे

हो चुके मैले

तुम्हें दिखते नहीं क्या/ भूल बैठे तुम

कथाओं में झलकती/ तंगहाली

वह सुबह से श्शाम तक/ विद्याव्रतों के पेट खाली
अब नहीं पहचानते तुम/ क्या पसीने चाक सीने
रिक्त संवादों के जो/ आकाश है फैले
तुम्हें दिखते नहीं क्या

मानव अविश्वास का संकट पूरे समाज का संकट है। यह कैसी संस्कृति को जन्म देगा, यह प्रश्न चिन्तनीय है। विविध प्रकार के संघर्ष झेलते विकास-पथ पर नवगीत का अग्रसर बने रहना ही उसकी विश्वसनीय संप्रेषणशीलता का जीवन्त उदाहरण है।

नवगीत का रागात्मक होता आधुनिक स्वरूप बौद्धिक है, अनुशासित है, आशावान है। बुद्धिवादिता या बौद्धिकता आज के युग की ही देन है। आज के समय से बातचीत करता नवगीतकार हृदय नहीं मस्तिष्क प्रधान हैं मानवीय चेतना के वैचारिक संवर्धन के फलस्वरूप सहज संप्रेषणीय है। यह आज के ज्वलंत प्रश्नों के प्रति, विश्व में बढते हुए आतंक के प्रति, भ्रष्टाचार जैसी कुरीतियों के प्रति, समाज के बिगडते चारित्रिक पतन के प्रति, असंतुलित होती देश की राजनैतिक स्थितियों के प्रति, संबंधों एवं रिश्तों के प्रति तथा प्रेम सौहार्द जनित संस्कारों के प्रति पूरी तरह से जागरूक है। समाज की पदचाप पर उनकी पैनी नजर है। सुप्रसिद्ध आलोचक पारसनाथ गोवर्धन के शब्दों में - ''आज के नवगीतकारों में वैचारिक प्रतिबद्धता अधिक है, सघन है, केन्द्रीय भूमिका में है, आधुनिक जीवन समसामयिक परिवेश, परिवेशगत विसंगति और व्यवस्था के प्रति क्षोभ, आक्रोश की अभिव्यक्ति अद्यतन नवगीतों में बडे सहज और प्रभावोत्पादक के रूप में व्यक्त हुई है। कहीं-कहीं अति उत्साह और चिन्तन के कथन से सपाटता लक्षित की जा सकती है। फिर भी नवगीत का भविष्य उज्जवल है। उसका अभिव्यक्ति क्षेत्र समकालीन कविता की किसी भी विधा या शैली से अधिक व्यापक और गंभीर है, उसमें एक निरन्तरता है जो उसकी जीवन्तता का प्रतीक है।''

नवगीतकार : शंभुनाथ सिंह, नीरज, वीरेन्द्र मिश्र, जगदीश गुप्त, रामदरश, मिश्र, ठाकुर प्रसाद सिंह, हरीश मदानी, नरेश सक्सेना, दिनकर, सोनवलकर रवीन्द्र भ्रमर, शलभ श्रीरामसिंह ठाकुर आदि।

नवगीतों में समाहित बौद्धिकता के कारण ही गीतों में आधुनिकता युगबोध और संवेदना के नए धरातलों का समावेश हुआ है। छायावादी गीतों में कल्पनालोक का भ्रमण है; तो नवगीतों में भोगे हुए आत्मपरक सत्यों का अनुभवजन्य शब्दों से उद्घाटन करना है। छायावादी गीतकारों की तुलना में जीवन से पलायन के स्थान पर उन्होंने जीवन से संघर्ष को स्वीकारा है। इस काल के गीतकारों ने प्रणय को मानवीय

धरातल पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। आत्मीयता का औपचारिकता में परिवर्तन, निराशा, अनास्था, कुंठित मनोस्थिति को विविध कोणों से इन गीतों में चित्रित किया गया है। सुविधावादी प्रवृत्ति से समझौता न करते हुए उन्होंने अपने गीतों में समकालीन दृष्टिकोण का चित्रण किया है।

निष्कर्षतः समकालीन नवगीत समय से सीधा संवाद करते हुए अपनी पूरी शिद्दत के साथ समाज को महत्वपूर्ण आयाम दे रहा है। नवगीत ने परिवर्तित दिशा से पहचान करते हुए प्रयोगों के नये स्तर को छुआ हैं, किन्तु अपनी जमीन नहीं छोडी है। प्रयोगों के अत्यधिक आग्रह के कारण नई कविता कहीं कहीं हास्यास्पद या विकृति की अवस्था तक भी पहुँच गई है, किन्तु नवगीत सहज प्राकृतिक रूप में बने रहे है; क्योंकि नवगीत ने बौद्धिकता को भावना से सम्बद्ध कर एक संतुलन बनाये रखा है। नवगीत के इस सौन्दर्यबोध में एक स्वस्थ आधुनिकता है– जो सामाजिक संचेतना को पूरी संजीदगी से ग्रहण करती है और विचार तथा भावव्यंजना के नये प्रयोगों के माध्यम से सटीक रूप में अभिव्यक्ति करती है। रागात्मक संस्पर्श, नवीन भाव बोध, नये जीवन मूल्य, शिल्प की मौलिकता और अपनी सनातन ताजगी के साथ नवगीत अपने दायित्वों का बखूबी निर्वाह कर रहा है। जीवनबोध अपने आप में काव्य मूल्य नहीं है, न काव्य मूल्य का विकल्प ही है; पर काव्यमूल्य का निर्धारण करते हुए जीवन बोध अविचारणीय मान जिया जाये, इस प्रस्ताव से सहमति कठिन होगी।

''कविता यही करती है,
यह सीधा मगर जोखिम भरा काम
कि सारे शब्दों के बाद भी
आदमी के पास हमेशा बचा रहे
एक सादा पन्ना।''

अबोध कल्पना यथार्थ के तीखे एहसास को धुधँला नहीं बनाती है; अपितु विडम्बनापूर्वक उसे गहनतर तीखा बनाती है। यथार्थ के एहसास के साथ संघर्ष की स्मृति के साथ थोडी कौतुकी वृति या विनोदप्रियता भी काव्यत्व को सम्भव करने में उपयोगी होती है। लीलाधर जगूडी के अनुसार:– ''समकालीन कवियों की कविता ने न केवल भाषा की शक्ति को ही नया नहीं बनाया, बल्कि स्थिति का विश्लेषण भी किया है। वहाँ शब्द बुलेट का काम करते हैं, आम आदमी तक पहुँचने वाला मुहावरा युवा कविता ने रचा। बल्कि यों कहें कि आज की कविता आम आदमी की कविता है।''

२.८ निष्कर्ष :

छायावादी काव्य काल भारतीय समाज और साहित्य में अपूर्व प्रयोगों का काल है। तत्कालीन समय में विशिष्ट प्रयोगकर्ता थे- निराला।

व्यंग्य और विद्रूप के सहारे अपने समय की सामाजिक और वैचारिक विसंगतियों की व्यंजना करते हुए पाठक को काव्यानुभूति कराना ही छायावाद का प्रमुख ध्येय है। स्वाधीनता का बोध का विस्तार भारतीय किसान की उपनिवेशवादी और सामन्ती शोषण से मुक्ति की चिन्ता दिखाई देती है। प्रकृति के अप्रतिम सौन्दर्य में डूबता-उतरता कवि पाठक को भी प्राकृतिक सौन्दर्य लहरी में हिलोरें लगवाता है। अपनी स्वच्छन्द कल्पना प्रकृति से मनुष्य के रागात्मक सम्बन्धों की खोज करते छायावादी गीत दिखाई देते है। प्रकृति के लीला रहस्यों का अन्वेषण करती कवि की रहस्यवादी प्रवृति भी दिखाई देती है।

उपरोक्त तथ्यों का विश्लेषण करने से सुस्पष्ट हो जाता है कि भले ही छायावादी गीतों में रोमांसवाद, प्राकृतिक सौन्दर्य जैसी विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती है; तथापि उस काल के गीतों में युगीन समसामयिक दृष्टि समाहित है। छायावादी गीत भले ही कल्पना के आकाश में उडान भरते हो, तथापि वे पाठक को मन्त्रमुग्ध कर अपनी ओर आकर्षित तो करते ही है।

❑ ❑ ❑

• अध्याय - ३ •

श्री चन्द्रसेन विराट का व्यक्तित्व और रचनाधर्मिता की प्रेरणा

अद्यतन प्रकाशित कृति परिचय

गीत संग्रह			हिन्दी गजल संग्रह		
क्रमांक	नाम	वर्ष	क्रमांक	नाम	वर्ष
१	मेंहदी रची हथेली	१९६५	१	निर्वसना चाँदनी	१९७०
२	स्वर के सोपान	१९६८	२	आस्था के अमलतास	१९८०
३	ओ मेरे अनाम	१९६८	३	कचनार की टहनी	१९८३
४	किरण के कशीदे	१९७४	४	धार के विपरीत	१९८४
५	मिट्टी मेरे देश की	१९७६	५	परिवर्तन की आहट	१९८७
६	पीले चावल द्वार पर	१९७६	६	लडाई लम्बी है	१९८८
७	दर्द कैसे चुप रहे	१९७७	७	न्याय कर मेरे समय	१९८९
८	भीतर की नागफनी	१९७७	८	फागुन माँगें भुजपाश	१९९३
९	पलकों में आकाश	१९७८	९	इस सदी का आदमी	१९९७
१०	सन्नाटे की चीख	१९९६	१०	हमने कठिन समय देखा है	२००२
११	बूँद-बूँद पारा	१९९६	११	खुले तीसरी आँख	२०१०
१२	गाओ कि जिये जीवन	२००३	१२	बोल मेरी जिन्दगी	२०१३
१३	सरगम के सिलसिले	२००८		दोहा संग्रह	
१४	ओ, गीत के गरूड	२०१२	१	चुटकी चुटकी चाँदनी	२००६
			२	अँजुरी अँजुरी धूप	२००८
	मुक्तक संग्रह			**सम्पादित संकलन**	
१	कुछ छाया कुछ धूप	१९८९	१	गीत-गंध	१९६६
२	कुछ पलाश कुछ पाटल	१९९८	२	हिन्दी के मनमोहक गीत	१९९७

३	कुछ सपने कुछ सच	२०००	३	हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ मुक्तक	१९९८
४	कुछ अंगाारे कुछ फुहारें	२००७	४	टेसू के फूल	२००३
५	कुछ मिश्री कुछ नीम	२००९	५	कजरारे बादल–वर्षा गीत	२००४
६	कुछ लोहा कुछ मोम	२०१३	६	धूप के संगमरमर– ग्रीष्म गीत	२००५
			७	चाँदनी– चाँदनी	२००७

पुरस्कार एवं सम्मान :

१. मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य परिषद,भोपाल द्वारा माखनलाल चतुर्वेदी वर्ष १९७६ में पुरस्कार प्राप्त एवं १९९१ में सुभद्राकुमारी चौहान पुरस्कार। उतरप्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ से पुरस्कृत।

२. १९९२ में मध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, भोपाल द्वारा वर्ष १९९१–१९९२ का वागीश्वरी पुरस्कार प्रदत्त।

३. वर्ष १९९४ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा साहित्य सारस्वत की मानद उपाधि।

४. मारवाडी सम्मेलन, मुम्बई द्वारा घनश्याम सराफ सर्वोतम साहित्य पुरस्कार प्रदत्त।

५. साहित्य संस्था अभियान जबलपुर द्वारा १९९६ का दिव्य अलंकरण।

६. ११९६ का मध्यप्रदेश लेखक संघ, भोपाल का अक्षर आदित्य सम्मान।

७. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, भोपाल का वर्ष ११९७ का अम्बिकाप्रसाद पुरस्कार।

८. सम्भावना साहित्य संस्थान अभियान जबलपुर का वर्ष १९९८ का गजल विधा में श्रेष्ठ विधा कृति का हिन्दी भूषण पुरस्कार।

९. वर्ष १९९९ का राधादेवी स्मृति साहित्य संस्था, शिवनी, मध्य प्रदेश द्वारा २००० का हिन्दी भूषण पुरस्कार प्रदत्त।

१०. १९९९ में श्री साहित्य सभा, इन्दौर का उदयशंकर पुरस्कार।

११. मुरैना मध्य प्रदेश साहित्य संस्था का वर्ष १९९९ का गीत गन्धर्व पुरस्कार।

१२. कला संगम अकादमी, प्रतापगढ उत्तर प्रदेश का १९९९ में विवेकानन्द सम्मान

१३. राष्ट्रभाषा परिषद, मुम्बई का १९९९ में सप्तम महादेवी पुरस्कार।

१४. भारतीय संस्कृति संस्थान, नजीबाबाद से वर्ष १९९९ का भारती श्री सम्मान।

१५. गुजरात हिन्दी विद्यापीठ, अहमदाबाद, गुजरात का वर्ष २००० का हिन्दी गरिमा सम्मान

१६. अभियान साहित्य संस्था,जबलपुर द्वारा वर्ष २००१ का नूर हिन्दी भूषण सम्मान प्रदत्त।

१७. साहित्यकार संसद समस्तीपूर बिहार का २००२ में मीर तकी मीर राष्ट्रीय शिखर सम्मान।

१८. हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग का वर्ष २००२ में सम्मेलन सम्मान।

१९. २००२ में गाजियाबाद उ.प्र. माण्डवी प्रकाशन का निर्मलादेवी स्मृति साहित्य पुरस्कार।

२०. सृजन सम्मान, छत्तीसगढ द्वारा २००३ में नारायणलाल परमार सम्मान।

२१. अभियान साहित्य संस्था,जबलपुर द्वारा वर्ष २००३ का शान्तिराज हिन्दी रत्न अंलकरण।

२२. तुलसी साहित्य अकादमी, भोपाल द्वारा २००४ में तुलसी सम्मान।

२३. २००४ में डॉ. रामेस्त्रर खण्डेलवाल द्वारा तरुण अखिल भारतीय काव्य पुरस्कार।

२४. २००४ में म.प्र.राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, भोपाल का वर्ष २००४ का अम्बिकाप्रसाद दिव्य पुरस्कार।

२५. अखिल भारतीय कलामंच मुरादाबाद द्वारा २००४ में रामकिशन अग्रवाल स्मृति गीति साहित्य सम्मान।

२६. काव्य शोध संस्थान, दिल्ली का २००४ में काव्य वारिधि सम्मान।

२७. कादम्बरी साहित्य संस्था,जबलपुर द्वारा वर्ष २००५ का पं. रामेन्द्र तिवारी समग्र लेखन सम्मान प्रदत्त।

२८. कला मन्दिर, भोपाल द्वारा पवैया पुरस्कार २००५ में।

२९. पुष्पगंधा प्रकाशन वर्धा छ.ग. द्वारा स्व. हरिठाकुर स्मृति सम्मान २००६ में

३०. नेमा फाउण्डेशन द्वारा २००६ में तुलसी राम नेमा साहित्य सम्मान।

३१. करवट कला परिषद भोपाल के द्वारा २००७ में कलासाधना सम्मान।

३२. रिसर्च लिंक शोध जर्नल इन्दौर द्वारा समग्र अवदान हेतु २००८ में स्वर्णपदक प्राप्त।

३३. भारतीय वाडमय पीठ कोलकता द्वारा २००९ में रविन्द्रनाथ ठाकुर सारस्वत साहित्य सम्मान प्राप्त

३४. रामकिशन सिंहल फाउण्डेशन शिवपुरी द्वारा २००९ में गिरिजाशंकर गीत नवगीत सम्मान।

३५. अभिनव कला परिषद भोपाल द्वारा २०१० में अभिनवशशब्द शिल्पी मानद उपाधि।

३६. लेखक संघ भोपाल द्वारा २०१० में मेहमूद जकी स्मृति गजल सम्मान।

३७. मालवा रंगमंच समिति उज्जैन एवं कृतिका कम्यूनिकेशन द्वारा २०१० में हिन्दी सेवा सम्मान।

३८. देव भारतीय पत्रिका का वर्ष २०११ में देव भारतीय सम्मान।

३९. साहित्य संस्था भारतेन्दु समिति द्वारा २०१२ का शंभुदमाह सक्सेना सम्मान।

४०. २०१२ में उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा साहित्य भूषण सम्मान।

४१. शासकीय अहिल्या पुसतकालय इन्दौर का २०१३ में कृति कुसुम सम्मान प्रदत्त।

४२. २०१४ में बोल मेरी जिन्दगी कृति पर कुसुम सम्मान प्रदत्त।

४३. २०१४ में भारतीय वाडमय पीठ कोलकता द्वारा साहित्य शिरोमणि मानद उपाधि।

४४. दुष्यंत कुमार संग्रहालय भोपाल द्वारा २०१४ में सुदीर्घ साधना सम्मान।

३.१ श्री चन्द्रसेन विराट का जीवन परिचय :

श्री चन्द्रसेन विराट एक पहचाना हुआ नाम है- हिन्दी गजल एवं गीत विधा के लिए। वह केवल यांत्रिक कवि नहीं अपितु एक संवेदनशील या सौन्दर्याभिभूत व्यक्ति है। उनके साथ और उनके भीतर एक बहुत व्यापक अनुभव तथा जीवन्त संसार हर वक्त मौजूद रहता है; इसलिए काव्य प्रतिभा से प्राप्त उनकी कल्पनाशीलता हवाई न होकर जीवन की सहज स्वाभाविकता से आप्लावित है। उनके काव्य में जीवन के सौन्दर्य की व्याप्ति है और रस का उन्मेष। इसी कारण उनकी लेखनी में कलात्मकता की अभिवृद्धि हुई है और सजग विश्वास-आस्था का सन्निवेश भी। वस्तुत: विराट का काव्यदर्शन रागात्मक अनुभूति का दर्शन है।

कविवर विराट के गीतो और मुक्तिकाओं में सुख-दुख के सामंजस्य का प्रस्थापन है, प्रेयसी-प्रियतम के प्रणय व्यापार संयोग संयोग-वियोग (संयोग अधिक, वियोग कम) के अनेक रूपों में अभिव्यक्त हुए हैं, वहीं प्रणय सम्बन्धों में एक दृढता का भाव अनुस्यूत है। साथ ही जीवन के चिरन्तन सत्यों के बोध में जीवन के शाश्वत मूल्यों में संतुलन की अभिव्याप्ति हैं। इसलिए प्रकृति में कवि के भावों का प्रक्षेपण सर्वत्र है और समस्त जड वस्तुएँ मनुष्य की चेतना में रंगकर रूपायित हो गई हैं। निर्वसना चाँदनी, आस्था के अमलतास, पलकों में आकाश की रचनाएँ, रागात्मकता, रसात्मकता और प्रकृति की उदातता से आप्लावित है।

आलोचकों एवं समीक्षकों द्वारा विराट को आत्मिक और माँसलवादी सौन्दर्य का अद्वितीय कवि कहा है; कारण यही हो सकता है कि उनकी रचनाओं में संगमरमर का उजलापन और गुलाब की कमनीयता से अनुप्रेरित सुगंध दोनों ही विद्यमान हैं, जिनमें मार्मिकता और निजत्व देने का भरपूर सामर्थ्य है। किन्तु विराट ने अपने गीत-सृजन एवं रोमानी रूझानों को खुद ही रद्द करते हुए तथा दुष्यन्त की जमीन को पहचानते हुए अपनी जमीन पर खडे होने की सार्थक पहल की हैं और इसी पहल का सिलसिला उन्हें कविता

के काल्पनिक आकाश से हटकर दुखियारे जीवों के विस्तृत और यथार्थ संसार से जोडता भी हैं। वह केवल भावुकता के संसार में 'अनास्था पैदा करने की जमीन तैयार नहीं करते, वे तो आस्था के साथ सर्जनात्मक ईमानदारी पर भरोसा करते हुए समष्टि के सत्य को इतिहास का परिवर्तन चक्र बनाते है।

अस्सी (८०) वर्ष पूर्व ३ दिसम्बर १९३६ को जन्में चन्द्रसेन विराट की मातृभाषा मराठी है। सन १९५८ में नागरी यांत्रिकी में नेशनल डिप्लोमा प्राप्त कर ये सेतु निगम के प्रबन्धक के पद पर कार्यरत है। उनका प्रारम्भिक जीवन मध्यमवर्गीय आर्थिक विषमता की स्थिति में व्यतीत हुआ। पिता श्री यादवराव डोके साधारण मास्टर से जिला शिक्षा अधिकारी के पद पर पहुँचे। स्वयं विराट ने भी ८० रूपये प्रतिमाह की प्राथमिक शाला की मास्टरी की, साथ ही यांत्रिकी (इंजनियंरिग) की पढाई भी। प्रारम्भ से ही जीविकोपार्जन का कष्ट भोगने वाले विराट की अभावों से पुरानी पहचान रही है।

किशोरावस्था में सुने राम-दंगलों ने विराट को बहुत प्रभावित किया। यद्यपि गीत-लेखन के बीच नैसेगिक रूप से उन्हें अपनी माता जी श्रीमती नेणूताई डोक से ही प्राप्त हुए हैं। पत्नी हेमलता ,पुत्रद्वय संतोष, तथा एक पुत्री सपना डोके बस यही उनकी गृहस्थी है।

विराट के अजस्त्र काव्य स्रोत ने हिन्दी काव्य जगत को १२ मार्मिक कृतियाँ- मेंहदी रची हथेली, स्वर के सोपान, ओ मेरे अनाम, निर्वसना चाँदनी, किरण के कशीदे, मिटटी मेरे देश की,पीले चावल द्वार पर, दर्द कैसे चुप रहे, भीतर की नागफनी, पलकों में आकाश, बूँद-बूँद पारा और आस्था के अमलतास दी है। पीले चावल द्वार पर कृति पर मध्य प्रदेश हिन्दी साहित्य परिषद, भोपाल द्वारा माखनलाल चतुर्वेदी पुरस्कार, एवं उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ का पुरस्कार प्राप्त कर चुके है। निर्वसना चाँदनी और आस्था के अमलतास हिन्दी गजलों या मुक्तिकाओं के काव्य संग्रह है और शेष गीत संग्रह।

विराट जी ने गजल को मुक्तिका कहा है। उनकी भाषा मराठी है, अत: उनके लिए खडी बोली हिन्दी का संस्कृतनिष्ठ रूप अधिक सहज प्रतीत होता है, बनिस्बत खडी बोली के उस रूप के, जो उत्तर प्रदेश, हरियाणा और उसके आस पास के क्षेत्रों में प्रचलित है- अर्थात उर्दू मिश्रित रूप। विराट जी ने भी इसी भाषा को अपनी भावाभिव्यक्ति का आधार बनाया है। प्रतीत होता है कि इस शुद्ध हिन्दी भाषा में गजल लिखनेवालों में श्री चन्द्रसेन विराट भले ही अकेले नहीं है किन्तु सर्वोपरि निश्चय ही है।

विराट जी प्राय: ही हिन्दू धर्म और संस्कृति के परिप्रेक्ष्य से हिन्दू संस्कृति और द्योतक भाव और श्शब्द लेकर उनसे अपने काव्य को सजाते है। वे मस्ती, प्रेम और सौन्दर्य का आस्वाद देने वाले रोमानी कवि है। उनकी पंक्तियाँ प्राय: ही गीतों का तरन्नुम और संगीत की झूमती हुई लय लिये होती है।

३.२ चन्द्रसेन विराट का रचनात्मक व्यक्तित्व :

चन्द्रसेन विराट जी का रचनात्मक व्यक्त्तिव विविधतापूर्ण है। एक गीतकार के रूप में ख्याति पाने के साथ–साथ उन्होंनें गजल के क्षेत्र में भी अपनी विशिष्ट पहचान बनाई। विराट जी की लेखनी ने भारतीय जीवन के विविध पक्षों को अपनी रचना का आधार बनाया। मानव जीवन के दुख, पीडा, संत्रास, घुटन जैसे समसामयिक जीवन बोध का रचनात्मक रूप प्रस्तुत किया। उनकी रचनाओं में एक ओर देश, जातीय अभिमान, संस्कृति, परम्परा ओर भारतीय मानस का बोध है तो दूसरी ओर राष्ट्रीय प्रेम, मानवीय स्वाभिमान और उसकी गरिमा, मानव सम्बन्ध, नारी के आदर्श रूप, श्शाश्वत सौन्दर्य और जीवन के प्रति आस्था का भाव है।

विराट जी ने इन विषयों को अपनी रचनाधर्मिता की क्षमता के अनुरूप छन्दबद्ध करने का उपक्रम किया है। विराट जी की रचनात्मकता व्यापक विधान और भावों के विस्तार से भरी है। वे गीत, गजल, मुक्तिका, मुक्तक आदि में छंद प्रयोगों की ओर आकृष्ट रहे है। विराट जी ने छन्द के अनुरूप भाषा का प्रयोग करते हुए उसके प्रतीकात्मक, बिम्बात्मक, लाक्षणिक आदि रूपों का आवश्यकतानुरूप प्रयोग किया है। उनकी रचनात्मक क्षमता और संलग्नता के विषय में यह कथन उल्लेखनीय है कि – भारतीय जनजीवन, भारतीय संस्कृति से विराट कभी पृथक नहीं हुआ। यह विराट की एक ऐसी विशेषता है, जो उन्हें अन्य रचनाकारों से अलग कर एक विशिष्टता प्रदान करती है। उनकी रचनाओं में चित्रित बिम्ब, अनुभूति, कल्पनाएँ और चित्र शुद्ध भारतीय धरातल पर है। उनकी रचनाओं में दुख, पीडा, संत्रास, घुटन आयातित नहीं हैं। जिस धरती, जिस माटी जिस हवा पानी में लेखक श्वास लेता है, वहीं के है।

विराट की कृतित्वता अनुभूति की तीव्रता, प्रेम की कोमलता और बौद्धिक संतुलन की देन है। विराट की कृतित्वता का सामाजिक दृष्टिकोण इस बात को व्यक्त करता है कि जीवन से निर्लिप्त रहकर काव्य जीवित नहीं रह सकता और न ही जनविमुख होकर वह अपना अस्तित्व कायम रख सकता है। उनकी कृतित्वता का उद्देश्य यह है कि वह मानवीय संदर्भो को समसामयिक परिप्रेक्ष्य में मानवीय करुणा को बहाकर, सुप्त संवेदनाओं को जगाकर सामाजिक चेतना लाना चाहते है। वह युगीन हलचलों में तटस्थ न रहकर उनमें अपनी सक्रिय भागीदारी निभाना चाहते है। उनके लेखन में शैली की सहजता एवं प्रवाहमयता है।

३.३ श्री चन्द्रसेन विराट का रचना जगत में प्रवेश :

चन्द्रसेन विराट का जन्म ३ दिसम्बर १९३६ को इन्दौर के बलवाडा ग्राम में हुआ। विराट के पिता का नाम श्री यादवराव डोके तथा माता का नाम श्रीमती वेणुताई डोके था। इनके पिता शासकीय सेवा के अन्तर्गत शिक्षा विभाग में शिक्षक थे। पिता के स्थानान्तरण के कारण इनकी प्रारम्भिक शिक्षा क्रमश: मनासा, महिदपुर, कन्नौद, इन्दौर आदि नगरों में हुई। माँ के सान्निध्य से इन्हें नैसर्गिक कवित्व प्राप्त हुआ। बचपन से ही माँ को गुनगुनाते हुए सुनने पर इन्हें गायन व लेखन की प्रेरणा मिली। संगीत के प्रति रूचि उन्हें अपनी माँ से प्राप्त हुई, उनकी माँ की भजन गाने में एवं संगीत में रूचि थी।

चन्द्रसेन विराट नौ-दस वर्ष की आयु में ही तुकबंदी करने लगे। जब विराट चौथी कक्षा में अध्ययनरत थे, तब महिदपुर के उसी स्कूल में (जिसमें वे अध्ययन कर रहे थे) १५ अगस्त के समारोह में उन्होंने अपनी पहली स्वरचित रचना का पाठ किया। रचनाकार के रूप में यह उनका प्रथम प्रयास था; निरन्तर स्कूल के उत्सवों में सहभाग करने से उनके लेखन मे ंउत्तरोतर प्रौढता आती गई।
रचनाकार के रूप में यह उनका प्रथम परिचय था। इनकी प्रथम रचना इंदौर के जागरण नामक समाचार पत्र में प्रकाशित हुई। उसके पश्चात निरन्तर विविध पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनाएँ प्रकाशित हुई।

उनकी प्रथम रचना इन्दौर से प्रकाशित 'जागरण' नामक समाचार-पत्र में सन्१९५५ में प्रकाशित हुई। उसके पश्चात् उनकी अस्फुट रचनाओं का प्रकाशन विविध पत्र-पत्रिकाओं यथा: धर्मयुग, माध्यम, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, कादम्बिनी, आज आदि में प्रकाशित होने लगी। सभी प्रकाशित रचनाओं का संकलन संग्रहों में समाहित है। सऩ १९६६ में दिल्ली के लाल किले पर गणतन्त्र दिवस के अवसर पर कवि विराट ने राष्ट्रीय स्तर पर होने वाले कवि सम्मेलन में 'गोपालदास नीरज, दिनकर, वीरेन्द्र मिश्र, हरिवंशराय बच्चन आदि प्रतिष्ठित कवियों के साथ काव्य पाठ किया।

विराट को शैशवावस्था से ही मंच से लगााव था, जो आज तक बना हुआ है। विराट ने सन् १९५८ में सर्वप्रथम आकाशवाणी पर रचनापाठ किया आकाशवाणी पर इनकी रचना 'चाँद का डोरा' बहुत लोकप्रिय हुई। विराट अपनी रचना लिखने के साथ-साथ उसकी धुन स्वंय बनातें हैं। सारिका, सरिता, मुक्ता, साक्षात्कार, कलावर्ता आदि पत्रिकाओं में समय-समय पर उनकी रचनायें प्रकाशित होती रही।

इनके परिवार में विराट सहित पाँच सदस्य हैं। इनकी पत्नी का नाम श्रीमती हेमलता डोके हैं। इनके दो पुत्र एवं एक पुत्री है। इनके पूर्वज मूलत: महाराष्ट्र के पूना श्शहर के निवासी हैं। पितामह श्री कृष्णरावजी

डोके तत्कालीन होकर राज्य में सैन्य अधिकारी के पद पर पदस्थ होकर इन्दोर में स्थायी रूप से बस गये। श्री यादवरावजी ने शिक्षक के रूप में शासकीय सेवा कार्य आरम्भ किया और शिक्षा अधिकारी के पद पर पहुँचकर सेवानिवृत हुए। इनका पाणिग्रहण पच्चीस वर्ष की आयु में ४ मई १९६१ को विमल अम्बेडकर के साथ पूना में सम्पन्न हुआ।

सन् १९५३ में हायर सैकण्डरी की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। सन् १९५६ में होलकर कॉलेज इन्दौर से इन्टरमीडिएट की परीक्षा विज्ञान विषय लेकर उतीर्ण की। तत्पश्चात् गोविन्दराम सेक्सरिया टेक्नालाजिकल इंस्टीट्यूट इन्दौर से सन्१९५८ में नागरी यांत्रिकी में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। बचपन से विराट की अध्ययन में विशेष रूचि थी। विपरीत परिस्थितियाँ होने पर भी इन्होंने साहस नहीं छोडा और अपनी पढाई सतत जारी रखी। १८५९ में श्री विराट लोक निर्माण विभाग में अभियंता के पद पर नियुक्त हुए।

उन्हें साहित्य सृजन की प्रेरणा किशोर अवस्था में सुने गये राम दंगलो से मिली, जिसमें गीत संगीत की प्रतियोगिता होती थी। साहित्यकारों में उन्हें जिन-जिन कवियों सें प्रेरणा प्राप्त हुई-सुर्यकान्त त्रिपाठी निराला, प्रसाद, दिनकर, बच्चन, नीरज एवं त्यागी।

कविताएँ लिखने के प्रारम्भिक दौर में, मैं वीर रस की कुछ लम्बी कविताएँ लिखता था और ऊँची आवाज में जोश-खरोश के साथ पढता था। यह गीतो की रचना एवं मधुर कंठ से प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता था। वीर रस की जोशीली रचनाओं की प्रस्तुति के बाद मित्रगण मुझ स्थूलकाय की 'तुम्हारा सब कुछ विराट है भई, क्या शरीर, क्या कविताएँ और क्या पढना। सब कुछ के साथ तुम विराट ही हो ।' मजाक में कही जाने वाली इस टिप्प्णी के साथ विराट नाम धीरे-धीरे मेरे नाम के साथ कब जुड गया (शायद १९५५ से १९५९) कुछ ठीक से मुझे भी याद नहीं है। विराट उपनाम मेरे नाम के साथ जुडा एवं प्रकाशित/ प्रसारित एवं थोडा बहुत प्रचारित हो जाने के बाद इसे छोडा जाना संभव ही नहीं रहा और यह उपनाम मुझे काम से वामन एवं नाम से विराट होने का बोध कराता रहता है। शायद इसी बोध ने मुझसे स्वयं पर यह व्यंग्य भी करवाया है कि- 'तुम थे विराट लेकिन वामन निकल गये।' १९६० में डॉ. हरिवंशराय बच्चन से भेंट करके आशीर्वाद लिया था। जब भी उन्होंने कहा था कि 'अच्छे भले गीतकार हो, कोमल मधुर गीत लिखते हो, यह क्या अपना नाम विराट रख लिया? कितना परुष, कठोर एवं ध्वनि की दृष्टि से गीतकार के लिए अनुपयुक्त नाम रख दिया तुमने। मुझ पर घडों ठण्डा पानी पड गया। किन्तु खुद को सयंत कर उत्तर दिया- 'डॉक्टर साहब मुझे मेरा कवि नाम चुनने का अवसर ही कहाँ मिला? यह तो प्रारम्भिक

अवस्था में मेरे मित्रों द्वारा मजाक में दिया गया नाम है जो मेरे साथ चिपक गया है। अगर मुझे मौका मिलता तो अपने लिए कोई मधुर सा, कोमल सा नाम नहीं चुनता? तब तो फिर इसी नाम को अपने कवित्व को सार्थक करो –डॉ. बच्चन बोले। मैने आँखें मूँदकर इसे उनके आशीर्वाद के रूप में ग्रहण किया और चुप हो गया।

३.४ विविध विचारधाराओं के आधार पर विराट का व्यक्तित्व :

श्री विराट की विचारधाराओं का विवेचनापरक विश्लेषण निम्नानुसार है–

१. व्यक्तिगत साक्षात्कारों के आधार पर

२. संग्रहों की भूमिका के आधार पर

३. प्रमुख रचनाओं के आधार पर

१. व्यक्तिगत साक्षात्कारों के आधार पर :

श्री विराट गंभीर प्रकृति के व्यक्ति है। बनावटीपन से दूर, सीधा–सादा जीवन व्यतीत करने वाले कवि विराट के हृदय में श्शोषण के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया है। निराला, प्रसाद, दिनकर, बच्चन, दुष्यंत, नेपाली, नीरज एवं त्यागी जैसे महान कवियों से प्रभावित श्री विराट ने अपने जीवन के अनुभवों को ही काव्य सृजन किया।

''सिर्फ मेरे ही नयन थे, जो जरूरत के समय
जब कोई न दे रहा था, दे गये पानी मुझे।
क्या कहूँ अपने अंह की आज तक मेरे सिवा
मिल न पाया दूसरा मुझसे अधिक मानी हुई।''

२. संग्रहों की भूमिका के आधार पर :

रमानाथ अवस्थी ने विराट के काव्य की चर्चा करते हुए कहा है कि – ''श्री विराट की कविताएँ, गीत या गजल रचनाएँ पढी और सुनी तो लगाा कि जैसे उनका रचनाकार कविता के बहाने एक ऐसी अनूठी शब्दसृष्टि कर रहा है, जो उसे उस बिन्दु तक ले जायेगी, जहाँ एक ऐसा गुलाब जो अकेला होकर भी पूरी फुलवारी से अधिक आकर्षक और हमारी पहचान के योग्य है। मेरे लिए विराट की कविता उसी गुलाब की तरह है। मुझे विश्वास है कि यह गुलाब काव्य–देवता के लिए आनन्दमय छन्द जैसा होगा।''

विराट के गीतों और मुक्तिकाओं में युग जागरण की चेतना के साथ साथ जीवन की विसंगतियों से श्रांत-क्लांत मनुष्यों के लिए प्रणय के मधुर स्वर भी संवाहित किए है। उन्होंनें जीवन के विविध रंगों का समावेश कर काव्य को इन्द्रधनुषी छटा से श्रृंगाारित किया है।

३. प्रमुख रचनाओं के आधार पर :

श्री विराट जीवन के हर रंग और हर विधा के रचनाकार है। जीवन का यथार्थ उनकी रचनाओं में परिलक्षित होता है।

''इसमें आँसू भी है, हंसी भी है
इसमें कांटे भी है, कली भी है।
दूसरा पक्ष भी है जीवन का
धूप यदि है तो चांदनी भी है।।

रचना प्रक्रिया : उनकी गीत में गहरी आस्था है। प्रारम्भ से ही उन्होंने प्रेम एवं श्रृंगाार का रास्ता चुना और गीत के माध्यम से उन्हें व्यक्त किया। उनके गीतों में प्रेम की लय है जिसका अपना प्रवाह और प्रभाव है। आर्कषण, विकर्षण, आवेग, आवेश, आतुरता, अनुराग, प्रतीक्षा, समर्पण, सम्मोहन आदि संवेदनाओं का कलात्मक चित्रण उनके गीतों की विशेषताएँ हैं। भावुक और संवेदनशील गीतकार होने के साथ-साथ उनके गीतों में आम आदमी की पीडा भी अभिव्यक्त हुई है।

वे समय के प्रति चिन्तित और चेतनाशील गीतकार रहे है।यद्यपि उन्हें रूप और प्रणय का गीतकार माना जाता है,पर फिर भी वे समाज के प्रति अपने कर्तव्य से अनभिज्ञ नहीं है। उनकी रचनाधर्मिता इस बात का प्रमाण है कि वह हिन्दी की सास्कृतिक पीठिका लिए हुए प्रतीकात्मक तथा मिथकीय भावभूमि पर अपनी निजी शैली की स्वतन्त्र पहचान बनाती है। उनके गीत युग जीवन को अनेक प्रकार से रूपायित और ध्वनित करते है। उनकी रचनाधर्मिता, अनुभूति की तीव्रता, प्रेम की कोमलता और बौद्धिक सन्तुलन की देन है, उन्होंने दर्द को संवेदना के स्तर पर देखा, समझा, वैषम्यों का जहर पचाया और एक गीतकार के नाते अंधेरे पर रोशनी के हस्ताक्षर किये।

श्री विराट स्वयं स्वीकारते है- ''एक इन्द्रधनुषी पंखिल क्षण स्वर सतरंगी शब्द योजना के रंगो से सजा मुझे छूता है। एक अनोखी छटपटाहट, व्यक्त होने की आकुलता, एक अबूझ अकुलाहट मुझे गीत लेखन व कहने को विवश करती है- यही वह स्फुरण का अनिर्वचनीय क्षण मेरे लिए कविता लेखन एवं

काव्य सृजन का क्षण होता है। यह छन्दमयी, गानमयी श्शब्दाभिव्यक्ति मुझे विवश करती है कि कुछ लिखूँ, कुछ गाऊँ, एक पूरा भाव, एक पूरा विचार छन्द के वेश में मेरे कंठ पर दस्तक दे तो मैं कब तक अनगाया रह सकता हूँ। बस इसी तरह मेरे गीत का जन्म होता है।''

आज के यांत्रिक जीवन में मानवीय संवेदनाओं को बरकरार रखने के लिए कविता की जरूरत को बहुत भीतर से महसूस करते है। विराट की कविता विभाजन और अलगााव के प्रति मानवीय सदाशयता और मूल्यों की कविता है।

यह विभाजन धार का अलगााव वर्जित कर चले।
दो तटों को जोड दे वह सेतु निर्मित कर चले।
हम किरण का बाण पूरी श्शक्ति से मारे उसे
वध न चाहे तिमिर का किन्तु मूर्छित कर चले।

विराट की राय में गीतों का उत्स है- दर्द की तीव्रता। गीतों की तरलता अश्रु का अवदान है। इनके भीतर का कवि सत्ताधारी तानाशाह, अंहकारी और अविवेकी मुखौटाधारियों का विरोध कर सदैव सजगता के साथ समाज के प्रहरी बनने का कार्य करते है। वे कहते है कि कला न तो जीवन से निर्लिप्त हो सकती है और न जनविमुख होकर अपना अस्तित्व कायम रख सकती है। उनकी कविता व्यक्तियों के अन्तर्मुखी संकीर्ण दृष्टिकोण में विस्तार लाना चाहती है और तटस्थ दर्शक बनकर युगीन हलचलों में अपनी साझेदारी निभाना चाहती है।विराट की रचनाधर्मिता में श्शैली शिल्प की सहजता और प्रवाहमयता है।

अनेक स्थितियों में विराट वस्तुस्थिति का सही मुआयना करते हैं, जब उनकी जुबान धारदार हो जाती है और वे चुनौती के स्वर में उतर आते है। भयावह स्थितियों से सीधी मुठभेड और संघर्ष की लालसा उनमें दिखाई देती है। उनमें विकृतियों, विसंगतियों और विषमताओं को बेनकाब करनेवाली रचनाओं में सामाजिक यथार्थ और परिवेशगत सच्चाइयो का ताना-बाना अपनी सर्वोतम अभिव्यक्ति के नजदीक है और उनका स्वर भी सशक्त है। विराट का सृजन क्षेत्र में उस समय प्रवेश हुआ, जब कविता के प्रति सामान्य पाठक में भी अनासक्ति का जन्म होता है। कवि लिखते हैं कि-

''स्वर न जगते सुखों में
पीर ही कविता जगाती

कसक कोई गीत बनती

सांस घायल गीत गाती।''

गीत विधा पर विराट की पकड गहरी है अपने सघन भावों एवं विचारों को सरल रूप में व्यक्त करने की कला में वे निष्णात हैं। विराट अपने युग के उन सिद्ध कवियों में से है, जिन्होंनें हिन्दी गीत को नवान युग की आशा-आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति का सफल माध्यम बनाया। उनके गीत भावना के आंतरिक लय से अनुस्यूत, कोमल, मधुर और छन्द संगीत के अतिरिक्त विराट के गीतों में अन्त्यानुप्रास की सकल योजनाओं की सही और छोटे गत्यात्मक छन्दों को अपनाने की प्रवृति दिखाई पडती है, जिसके कारण उनके गीत गेयता से युक्त है।

वैशिष्ट्य पूर्ण रचना रचकर के किया अनूठा कार्य

निश्चय ही यह संग्रह होगा दुनिया को स्वीकार्य

चन्द्रसेन जी! आप बन गये हो शिल्प विद्या के धाम

मात्रिक छन्दों में प्रबल महारत, काव्यामृत की आन।''

निष्कर्ष : श्री विराट के गीत नवीनता से ओत-प्रोत है। उन्होंने अपने परिवेश की जटिलता को संक्षिप्त किन्तु प्रभावी रूप से सम्प्रेषित करने के लिए मुक्तिका लिखी।

३.५ गीत और श्री चन्द्रसेन विराट :

पेशे से यांत्रिक होने के कारण वे बौद्धिक और मशीनी परिवेश में जीते हैं, पर कवि होने के कारण भावात्मक सागर में डूबते-उतरते रहते हैं, यद्यपि दोनों का समन्वय कठिन ही नहीं लगभग असम्भव सा है, पर श्री विराट के व्यक्तित्व की यही विशेषता है कि उन्होंनें दोनों पहलूओं को भिन्न नहीं माना अपितु एक के कार्य सिद्धि में दूसरे का प्रचूर सहयोग लिया हैं। कहतें है कि कवि भावुकता के प्रवाह में शिल्प को अनदेखा कर देता है, पर कवि विराट का यांत्रिक व्यक्तित्व इस कमी को भी पूरा कर देता है। उनके व्यक्तित्व की इस विशेषता ने उन्हें लोकप्रिय बना दिया. सनातन सामर्थ्य के धनी इस गीत विधा से चन्द्रसेन विराट भी प्रभावित हुए बिना न रह सके। अपने मानसिक विचारों एवं सोच के कारण उन्हें अपनी विचाराभिव्यक्ति के लिए गीत विधा ही सर्वोत्कृष्ट अनुकूल लगी. अपनी रचना प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि -'' मेरे गीतकार मन के तहखाने में न जाने एक बाँसुरी क्यों है? सासों की वायु पर बजना इस बाँसुरी का स्वभाव है, नियति है। गीत मेरे कवि मन की प्रकृति है। गीत के प्रति मेरी आस्था

अटूट है। अन्य विधाओं ने इतने लालच दिये, प्रतिष्ठित करवाने के कौल भरे, पर मेरा कवि मन गीत वाली उस बाँसुरी का ही आशिक है।'' विराट के ये उद्गार बताते हैं कि वे अन्य विधाओं की ओर गतिशील हो सकते थे, किन्तु उनके मन की स्वाभविक प्रकृति को गीत ही प्रिय लगे, फलत: उन्होंनें अपनी अटूट आस्था गीत को समर्पित की.

गीत के प्रति समर्पित श्री विराट अपने स्वभाव की मिलन सरिता से, सरलतम व्यक्तित्व से, अनवरत् साहित्य साधना से तथा स्वर के सम्मोहन से देशव्यापी ख्याति प्राप्त कर चुके है.जीवन के कठोर यांत्रिक यर्थाथ को भोगते हुए भी उनके गीतों की रसधारा आस्था, शक्ति, निष्ठा, ताजगी, उल्लास और सहज प्रेषणीयता से सम्बद्ध होकर निरन्तर प्रवहमान रही है.

वस्तुत: विराट एक समर्थ गीतकार हैं, जिन्होंने नवगीत को अपनी साधना से वास्तविक अर्थ प्रदान किया हैं और हिन्दी नवगीत की साठोत्तरी परम्परा को सम्पन्नता प्रदान की. अत: श्री नीरज के श्शब्दों में – ''गीत के लिए पूर्णत: समर्पित एक उज्जवल हस्ताक्षर आडम्बरों एवं औपचारिकता से परे मानवता के सरल रूप का समर्थक गीतकार जो किसी वाद से नहीं जुडा, जो किसी खेमें या मठ में श्शामिल नहीं हुआ. एकाकी अलख जगाया है. इस प्रकार विराट से गीत और गीत से विराट कभी अलग नहीं हो पाया।

❑ ❑ ❑

• अध्याय - ४ •

श्री चन्द्रसेन विराट : कृतित्व समीक्षा

४.१ रचनाएँ (कृतित्व) :

हिन्दी नवगीत में रूचि रखने वालों के लिए विराट एक परिचित और प्रतिष्ठित नाम है। विराट की कविताओं में स्वर, कथ्य और काव्य का विस्तार है। अक्सर गीत विधा पर यह आरोप लगााया जाता है कि वह आधुनिक जीवन की जटिल संवेदनाओं को व्यक्त करने में अक्षम है। इस आरोप को निराधार साबित करने के लिए विराट के गीत ही काफी हैं।

''जर्जर सी दीवारें औ दहते स्तम्भ
रिसती छत, धँसी नींव, गरिमा का दंभ,
भूमि रहन और पडा आँगन वीरान,
पीढी ने पाया विरासती मकान।''

इन्होंने लगभग १४ गीत संग्रह और १२ गजल संग्रहों से अपना रचनाकर्म सँवारा हैं। विषय के आधार पर वर्गीकरण संभव नहीं है। एक ही विषय पर विविधतापूर्वक लिखने के कारण इनकी रचनाओं में रोमाचंकता विद्यमान है। रचनात्मकता का परिचय उनके निम्न कृतिव से मिलता है–

गीत संग्रह :

''जीवन की यात्रा के सबसे सच्चे साथी गीत रहे है। कभी बात कर लेने को, कभी मन बहलाने को। यात्रा में इसकी आवश्यकता को कम महत्व नहीं देना चाहिए। यात्रा के मधुरतम क्षण साथी से बात बहलाव के ही होते है।...... पर सजीव, सप्राण और शक्त गीत वे होते हैं जिनमें चलते हुए यात्री की सांस सुनाई दे, जिनमें प्रस्थान का नवोत्साह, राह की कर्तव्यमय थकान, मंजिल पर पहुंचने का संतोष आराम प्रतिबिम्बित हो, जिनमें प्रभात के मन्द गंध समीर का स्पर्श, दिन की गर्दगुबारी, लू लपट का झोंका और संध्या की शिथिल श्शीतल हवा का झोंका - संक्षेप में जिनमें हरकत हो, गति हो, जीवन हो।''

(बच्चन– प्रवास की डायरी)

(१) मेंहदी रची हथेली (१९६५) : यह इनका प्रथम गीत काव्य संग्रह है। प्रस्तुत संकलन में कई गीत संकलित हैं यह संग्रह अनुपलब्ध है। १९६५ में विरचित उनकी इस कृति में कुल इक्यावन गीत हैं। विराट के गीतात्मा रूझान और चिंतन के प्रारम्भिक चरणों को दर्शाने वाले संकलन है। इन संकलनों में जहाँ कवि एक ओर प्रेम, सौन्दर्य एवं दर्द का निरूपण करता है, वहीं दूसरी ओर इनमें राष्ट्रीयता और नवनिर्माण के लिए विविध रूपात्मक संदर्भ भी प्रकट हुए है। इन गीतों की रचना का हेतु उनकी प्रबल अनुभूतियों में निहित हैं उनकी काव्यकृति के प्रारम्भ में लिखा है–

'' दुख ने जब मन को मथ डाला
तब आँसू का नवनीत मिला
जब दर्द घुल गया, साँसों में
तब अधरों को मधुगीत मिला।''

यद्यपि स्वयं कवि ने पीडा को अपने गीतों की प्रेरणा स्वीकार किया हैं, किन्तु यह पीडा सहज न होकर कृत्रिम सिद्ध होती है, क्योंकि इसमें विरह भावों का आदेश शिथिल है। काव्य कथन बनकर प्रकट हुआ है, संवेदना सघन क्रन्दन बनकर नहीं आई हैं। इस संदर्भ में निम्न उदाहरण दर्शनीय है–

'' एक भी ऐसी नहीं है साँस अब तो,
जो तुम्हारी तरल सुधि से नम नहीं हैं
पुतलियों में मूर्तिवत ही जड गयी तुम
एक मन्दिर बन गई हैं आँखें मेरी।।''

समीक्ष्य संग्रह के कुछ ही गीतों में वेदना का चित्रण है, 'तुम ओ मेरी नीलम नयने' जैसे गीतों में मिलन का आनन्द है, प्रसन्न परिवेश है, वेदना प्रेरित रूदन नहीं है। निसन्देह इस कृति के गीतों का उत्स केवल कवि की प्रबल अनुभूति ही हैं; कवि अपने मन की स्थिति के अनुसार प्रकृति को उदास और प्रसन्न देखता हैं।

(२) स्वर के सोपान (१९६८) : इस संग्रह के सर्वाधिक गीत संकलित हैं। इसके प्रथम संस्करण का प्रकाशन साहित्य भारती बम्बई से सन् १९६८ में हुआ। इसमें १६० गीत हैं। उन्होंने अपना यह संग्रह अपने पिताजी को समर्पित किया हैं। उन्होंने इस ग्रन्थ की भूमिका में लिखा है कि– गीत साहित्य की एक अविच्छिन्न धारा है। कविता का लेखन प्राय: गीत रचना से ही प्रारम्भ होता है। गीत उनके अन्त:करण

की आवाज हैं, इसके लिए उन्हें कोई श्रम नहीं करना पडता है, गीत स्वत: ही भाषा बनकर प्रस्तुत हो जाते हैं। गीत मेरे कवि मन की प्रकृति हैं।''

श्री विराट की यह द्वितीय प्रकाशित कृति रचनाकार के नए रूप से परिचित कराती है। मेंहदी रची हथेली में वे एक श्रृंगाारिक कवि प्रतीत होते हैं तो स्वर के सोपान में श्रृंगाारिक अभिरूचि के साथ-साथ उनका राष्ट्रीय चेतना का रूप भी सामने आया है। इस प्रकार यह काव्यकृति उनके रचनात्मक विकास के साथ ही वैयक्तिक विकास की भी साक्ष्य बनी है। रूपसी प्रेयसी के समक्ष उसके रूप की प्रशंसा में व्यस्त कवि का राष्ट्रीय गौरव के समक्ष श्रद्धानत हो जाना कोई सामान्य बात नहीं हैं।

'' इसके आँगन भरी पडी है
संस्कृतियों की गाथा
इसके इतिहासों के समक्ष
खुद ही झुकता माथा। ''

कवि के मानस में राष्ट्र प्रेम का यह उदय पारिवारिक परिस्थिति से पोषित और संस्कार और विचारों से विकसित है। कवि के प्रारम्भिक रचना काल में यौवन के उद्दाम आवेग तंरगों के प्रवाह में उनकी श्रृंगाारिक वृर्न्ति ही परवर्ती कालावधि में राष्ट्रीय-भावों की दीपशिखा के रूप में अधिक ज्योंर्तिमय होती चली गई। ''भीतर की नागफनी, सन्नाटे की चीख, लडाई लम्बी है, न्याय कर मेरे समय'' आदि उनकी कृतियाँ इसी बात का प्रमाण है।

'जिस जगह मूक हो जाती है कविता
बस उसी जगह लेता है गीत जन्म।''

उक्त पंद्याश लिखते हुए मन का विश्वास और गहन हो गया था कि जब कविता ऊर्ध्वमुखी होकर स्वर के पंखों पर आरोहित होती है, वह क्षण ही गीत का उद्गम क्षण है। अनुभूति घनीभूत होकर सहज-धर्मालय के संस्कार स्वीकार करती हुई स्वर से स्वयंवर रचाती है और गीत का अनायास ही जन्म होता है। गीतकार कहता है कि गीत रचना एक अनायास उपलब्धि है। इसी संदर्भ में वे कहते है कि-

'' मुझसे हुआ नहीं तर्को के
अनुशासित छंदों में गााऊँ
बुद्धि प्रेत के संकेतों पर
प्रयसिक स्वर में दुहराऊँ।''

वे लिखतें हैं कि– जीवन की घोर व्यस्तताओं से कुछ क्षण चुराकर गीत की बांसुरी की कुछ साँसें सौंपता है। यही मेरे अंतस के सृजनधर्मा कवि की रचना प्रक्रिया हैं रचनाकार स्वर शिल्पियों का निरन्तर आग्रह रहा है उन्हें गीत अपने सहजतम गुणों के साथ उपलब्ध हों, ताकि वे काव्य एवं श्रव्य की साधना में कुछ और वृद्धि कर सके। विनम्र भाव से मेरे गीत स्वर के सोपान चढने के लिए उद्धत है, देखूँ कि कितना स्नेह सहजेते हैं ?

(३) ओ मेरे अनाम (१९६८) : इस संकलन में जीवन के विविध विषयों पर आधरित ५० गीतों का संग्रह किया गया है। इसके प्रथम संस्करण का प्रकाशन 'लोक चेतना प्रकाशन' जबलपुर मध्य प्रदेश से सन् १९६८ में हुआ। अपना यह संग्रह उन्होंने अपनी ममतामयी माँ को समर्पित किया हैं।

''रूप अनेकों मिले राह में,
पर मुझको जिसकी तलाश में
वही अनाम नहीं मिलता।''

इस संग्रह के गीत अटूट आस्था और अटल निष्ठा के लिए समर्पित है। ये अनुभूत जीवन की अभिव्यक्ति के गीत हैं। इन गीतों की प्रेरणा कवि को जीवन संग्राम की प्रत्यक्ष अनुभूतियों से प्राप्त हुई है। श्रृंगाार इस संग्रह के गीतों का केन्द्रीय भाव हैं। यद्यपि अधिकांश गीत लौकिक धरातल पर नायक–नायिका के मिलन एवं विरह की प्रतीति कराते है, तथापि ओ मेरे अनाम जैसे गीतों में आध्यात्मिक भावभूमि का भी स्पष्ट संकेत मिलता है।

लेखक ने यथार्थ सामयिक शाश्वत परिस्थितियों का अवलोकन कर इस गीत की रचना की है, इसी सन्दर्भ में वे कहते है कि–

''यह नहीं जरूरी हर बादल बरसे
हर बार धरा की प्यास शमन ही हो
सब पाँव नहीं जाते हैं मंजिल तक
सबकी सब नावें पार नहीं जाती
सबके सब पत्थर मूर्ति नहीं बन पाते
सबकी सब कलियाँ फूल नहीं बन पाती।''

अगले गीत में सयानी होती बेटी के बारे में विचार कर एक पिता उसके विवाह के विषय में विचाार कर अपनी संवेदनाओं को प्रकट करता हैं। विराट जी ने सामाजिक विषमता और अव्यवस्था पर प्रकाश डाला हैं ।

(४) किरण के कशीदे (१९७४) : किरण के कशीदें अनेक दृष्टियों से कवि के काव्य कौशल के विकसित आयामों को प्रस्तुत करता है. सौन्दर्य दृष्टि, रागात्मकता, सुख-दुःख की अभिव्यक्ति, प्रकृति की विराट अभिव्यंजना के साथ ही महानगर बोध और आस्था के संदर्भ आदि सब मिलकर प्रस्तुत संकलन को श्रेष्ठता प्रदान करते है। अनेक दृष्टियों से कवि के काव्य-कौशल के विकसित आयामों को प्रस्तुत करता हैं।

''कढे हुए मेघो पर
किरण के कशीदे
यंत्रों की दुनिया में कौन पर खरीदे।''

सन् १९७४ में सरला प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित इस कृति में कुल ५७ गीत हैं। श्री विराट मूल रूप से कोमल भावनाओं और सरल तरल संवेदनाओं के भावुक गीतकार हैं। उनकी सौन्दर्य दृष्टि न केवल मानवीय संदर्भो में अपितु प्राकृतिक सन्दर्भो में भी सौन्दर्य का दर्शन करती हैं यादों के चीड, मौलसिरी फूली, बंसवट में बंसरी, पीला कनेर, निशिगंधा द्वार महकी, आदि उनके अनेक गीत इसके साक्षी है। इस संग्रह के गीतों में केवल कल्पना का नहीं, अपितु व्यवहारिक जीवन की कटुताओं के अनुभव को भी शब्दबद्ध करने का प्रयास किया गया है।

''वक्त बदला हुआ देख बदले सभी,
जो सगे थे हमारे वे चचेरे हुए।''

एक अन्य उदाहरण देखिये:-

''आवाजों आज मुझे एकाकी छोड दो
भीड से अलग भी तो
मेरा अस्तित्व हो
निजी इकाई मेरी
स्व पर स्वामित्व हो।''

आधुनिक युग के यांत्रिक कोलाहल से त्रस्त व्यक्ति की परेशानियों को व्यक्त करते हुए कवि कहते है कि किस प्रकार व्यक्ति आज के माहौल में मन की शांति और खुद का अस्तित्व बचाने का संघर्ष कर रहा है यह भाव व्यक्त किया हैं तथा इस संग्रह में कवि ने व्यक्त किया है कि गीत ने उनके स्वभाव को रंग लिया हैं। वास्तव में गीत, लेखनी और सृजनता यह सब विराट के व्यक्तित्व का एक अंग बन चुके

हैं, इनके बिना उनके अस्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती। उनके गीतों में जीवन्त अनुभूतियों की अनेक छायाएँ आलोकित होती है। जीवन के अनेक अछूते जीवन्त क्षणों पर उनके द्वारा प्रकाश डाला गया हैं।

'दर्शन पा लिया' गीत में कवि प्राकृतिक उपकरणों में अपने प्रिय का सौन्दर्य दर्शन वैसे ही प्राप्त करता है जैसे कि साकेत में विरहिणी उर्मिला शरद ऋतु के सौन्दर्य उपकरणों में अपने प्रियतम लक्ष्मण की छवि देखती है।

निरखि सखी ये खंजन आये ।
फेरे उन मेंरे रंजन ने नैन इधर मन भाए।
फैला उनके तन का आतप मन ने सर सरसाए।
घूमें वे इस ओर वहाँ ये हंस उड यहाँ छाये
करके ध्यान आज इस जन का निश्चय वे मुस्काये
फूल उठे हैं कमल, अधर से ये बन्धूक सुहाये।
स्वागत स्वागत शरद भाग्य से मैंने दर्शन पाये।
नभ ने मोती वारे, लो ये अश्रु अर्घ्य भर लाये

(५) मिट्टी मेरे देश की (१९७५) : मिट्टी मेरे देश की राष्ट्रीय भावनाओं को व्यंजित करता है, इस संकलन के गीतों में निर्माण के स्वर भरे पडे है। १४८ गीतों के इस संकलन के प्रथम संस्करण का प्रकाशन सन् १९७५ में प्रगति प्रकाशन आगरा से प्रकाशित हुआ। यह संकलन इनकी पुत्री सुश्री स्वप्ना को समर्पित हैं। राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत इस संकलन के राष्ट्रीय गीतों के पठन से पाठकों के मन में राष्ट्रीय भावना का उद्बोधन होता है।

एक समर्थ कवि अपने परिवेश में उपलब्ध सभी विषयों को स्पर्श करता है; उन्हें स्वर देकर जीवन्त बनाता है। उसका भीतरी कवि समभाव से सभी दृश्यों से अभिभूत होकर उन्हें अपनी लेखनी से उकेरता है। अपने देश की मिट्टी के प्रति सर्वदा जागरूक एवं चैतन्य पहरेदार के रूप में उसने हमेशा जागते रहो की आवाज लगायी। देश की मिट्टी के प्रति एक ऋणभाव उसके मन में समाया है, जिससे प्रेरित होकर हर बार वह अपने प्रेम एवं सौन्दर्य के शीशमहल से बाहर निकलकर उसे अपने मस्तक पर चन्दन के तिलक की भाँति लगाा लेता है। यह संग्रह विराट की ओर से अपनी मातृभूमि को समर्पित वे श्रद्धासुमन हैं, जिसमें देश के प्रति उनकी निष्ठा की गंध हैं। स्वर के सोपान के कुछ राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत गीत इस संग्रह

में भी प्रस्तुत हुए हैं। स्वर के सोपान में कवि की राष्ट्रीय भावना बीज और अंकुर रूप में थी, जबकि इस संग्रह में वह पूर्ण परिपक्व रूप में सामने आई है।

इस संग्रह में कवि की प्रखर देशभक्ति और सामाजिक जागरूकता के परिचायक है। देश प्रेम के साथ-साथ उसमें समसामयिक सामाजिक समस्याओं के समाधान उदार दृष्टि से राष्ट्रीय भावों में दर्शायें गये हैं। उन्होंने कुछ गीतों में देश के वन्दनीय व्यक्तित्वों को तो, कुछ गीतों में देश के प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक वैभव को नमन किया हैं। 'श्रम गंगा में आज नहा लो, शपथें उठाने का समय, निर्माण बुलातें हैं तुमको' जैसे गीतों में देश के नवनिर्माण का संकल्प हैं। इस प्रकार इस गीत संग्रह का धरातल अत्यन्त विस्तृत है।

इस संकलन में राष्ट्रीय भावनाओं को व्यंजित करता है, जिसके गीतों में निर्माण के स्वर भरे पडे हैं। सन् १९७६ में प्रकाशित दर्द कैसे चुप रहे में दर्द अभिव्यक्ति का प्रमुख आधार बना हैं। चाहे संदर्भ प्रेम का हो अथवा युग व्यापी विसंगतियों की वेदना सर्वत्र मुखर रही है। सन् १९७७ में प्रकाशित भीतर की नागफनी कवि विराट के आधुनिक बोध को समर्थता से व्यक्त करता संकलन हैं और यह सिद्ध करता है कि आधुनिक विसंगतियों से प्राप्त अनुभूतियों को व्यक्त करने का सामर्थ्य गीत में अधिक सशक्त हैं। वह केवल प्रेम प्रसंगों में वायवी उडान भरता हुआ पंछी नही हैं, बल्कि मनुष्य के सुख-दुख में डूबा, उसके अनुभवों को तदनुरूप आकार देता हुआ जमीन से जुडा जीवित संवेदन भी हैं । अस्तु प्रस्तुत संकलन जीवन का बहुविध प्रवृतियों को आकार देता हैं और कठोर वास्तविकताओं का साक्षात्कार प्रस्तुत करता हुआ अपनी शक्तिमता प्रदर्शित करता है। वस्तुत: विराट का यह संकलन आधुनिकता के बीच व्यक्ति की तडप के विभिन्न रूप प्रदर्शित करता हुआ मानवीय मूल्यों की रक्षा के लिए प्रयत्नशील हैं। सन् १९७८ में प्रकाशित संकलन पलकों में आकाश प्रेम संदर्भो के सुख-दुखमय चित्र उकेरता हुआ जिन्दगी की व्याख्या कर आस्था के मन्त्रों को उच्चारित करता है।

रूप, रस, यौवन, प्रेम एवं सौन्दर्य के गीत गाते हुए अपनी जन्मभूमि उस ममतामयी माटी के प्रति कृतज्ञता के भाव को व्यक्त किया हैं। अपने देश की मिट्टी के प्रति श्रद्धा भाव उनके मन में समाया है, जिससे प्रेरित होकर हर बार वह अपने प्रेम एवं सौन्दर्य के शीशमहल से बाहर निकलकर देश प्रेम को अपने मस्तक पर चंदन के तिलक की भाँति अर्चित कर लेता है। गाँधीजी के बलिदान एवं समर्पण के प्रति कृतज्ञ भाव व्यक्त करते हुए कवि कहते हैं कि-

''तुमने अपने बलिदानों से
सीचीं धरती देश की
तुमने रखी परम्परा
जीवित निज राम महेश की
तुमने रोपे विश्वासों के पौधे राष्ट्र जमीन में
आज उसी आस्था की फसलें लहरा उठी ललाम है।''

कवि स्वर्ग के देवताओं की पूजा का विरोध करते हुए कहता है कि हम अपने विश्वास, समर्पण और मेहनत से इस धरती को स्वर्ग बना सकते है। इन काव्य पंक्तियों के द्वारा कवि देश वासियों को कर्मठ बनकर मेहनत करने के लिए प्रेरित करता है, वह चाहता है कि व्यक्ति का खुद पर विश्वास दृढ हो।

इस संग्रह के अधिकांश गीत भारत पर चीन (१९६२) एवं पाकिस्तान (१९६५) के आक्रमण के समय रचे गये। गीतकार श्री विराट की वंशाानुक्रम से प्राप्त और संस्कार पोषित देशभक्ति की दीपशिखा इस आपातकालीन परिवेश में और अधिक उद्दीप्त हुई। प्रस्तुत गीत संग्रह के गीत उसी दीपशिखा की स्वर्णिम रश्मियाँ हैं जो युगों-युगों तक हमारी राष्ट्रीय भावना को आलोकित करेंगी।

(६) पीले चावल द्वार पर(१९७६) : पीले चावल द्वार पर प्रेम संदर्भो का उभयपक्षीय चित्रण हुआ है। प्रेम सौन्दर्य को कल्पना के माध्यम से उकेरा गया है तो वेदना को भी गहन गहराईयों के साथ अभिव्यक्त किया गया है। इसकी वैचारिक भूमि भी अत्यन्त पुष्ट है।

इस गीत संग्रह में गीतकार ने जीवन की वास्तविकताओं को सत्यता से प्रमाणित किया है। प्रेम के रंग में रंगे युवको को जीवन के सही मार्ग को दिखलाने का यथासंभव प्रयास किया है। विराट जी को जीवन में जो पीडाएँ मिली है, उसके लिए वह ईश्वर का आभार मानते है। उनके मत में यदि उनके जीवन में दु:ख ना आता तो उन्हें सुख की महत्ता का एहसास भी ना होता। आँखों में यदि आँसू ना होते तो संवेदनाहीन होकर मैं पत्थर बन जाता। अत: वे दु:ख और पीडा को मानवीयता को जीवित रखने के लिए आवश्यक मानते है।

''एक तुम्हारा रूप नहीं केवल कथ्य प्रिये
और विषय भी इस जीवन के गाने लायक हैं
जीवन सिर्फ प्रणय की सेज न है श्रृंगारमयी
शोक भरे से इसमें सजल पहर भी शामिल हैं

इस पदार्थवादी दुनिया में सिवा प्यार के भी
लाश स्वयं की ढोते हुए सफर भी शामिल हैं

श्री विराट के गीतों का यह काव्य-संकलन साहित्य परिषद भोपाल द्वारा माखन लाल चतुर्वेदी पुरस्कार एवं उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ से पुरस्कृत हैं। इसमें प्रेम संदर्भो का उभयपक्षीय चित्रण अत्यन्त सुन्दरता से हुआ हैं। इसके गीतों में जहाँ एक ओर प्रेम और सौन्दर्य की विराट कल्पना के माध्यम से उकेरा गया हैं, दूसरी ओर वेदना भी गहराइयों के साथ व्यंजित हुई है। इसकी वैचारिक पृष्ठभूमि अत्यन्त पुष्ट है।

एक तुम्हारा प्यार नहीं हैं केवल सत्य प्रिये
और सत्य भी जीवन के अपनाने लायक है।''

(७) दर्द कैसे चुप रहे (१९७७) : दर्द चुप कैसे रहे में चाहे संदर्भ प्रेम का हो या युग व्यापी विसंगतियों की वेदना सर्वत्र मुखर रही है। विराट जी एक ऐसे कवि है जिनके गीतों में जीवन के हर रंग हैं, वे सच्चे प्रेम को महत्वपूर्ण मानते हुए जीवन के कण्टाकीर्ण पथ पर आगे बढने के लिए उसे एक आवश्यक माध्यम मानते है।

मैं जब भी जिसे पूजता हूँ जग में
देव वही निष्ठुर वाहन बन जाता है
जिसकी छाया में क्षण भर रुक जाता हूँ
आघातों की गाज उसी पर गिरती है
ऐसी कुछ अपशकुनों की छाया मुझ पर
बेमौसम ही काली बदली गिरती है।

इस गीत के माध्यम से कवि ने अपने जीवन की एक ऐसी सच्चाई को व्यक्त किया है, जिसे झुठलाया नहीं जा सकता, यह उनकी निजी अनुभूति है, जिसे वह अपनी बदनसीबी से जोडते है।

(८) भीतर की नागफनी (१९७७) : भीतर की नागफनी नामक यह संकलन कवि विराट के आधुनिक बोध को समर्थता से व्यक्त करता है और यह सिद्ध करता है कि आधुनिक विसंगतियो को प्रभावी ढंग से व्यक्त करने के लिए गीत से उत्कृष्ट कोई ओर विधा नहीं हैं। वह केवल प्रेम प्रसंगों में वायवी उडान भरता हुआ पंछी नहीं है, बल्कि मनुष्य के सुख-दुःख में डूबा, उसके अनुभवों को तदनुरूप आकार देता हुआ जमीन से जुडा जीवित संवेदन भी है। अस्तु प्रस्तुत संकलन जीवन की बहुविध प्रवृतियों को

व्यक्त करता है। सर्वग्राही उपभोक्तावादी संस्कृति समाज के श्रेष्ठ मूल्यों को लील रही है, साथ ही मानवीय संवेदना को नष्ट करने पर तुली है।

विवेच्य गीतकार ने आज के शिक्षित बेरोजगारों की दुर्दशा का वर्णन इस कविता के माध्यम से करते हुए कहा है कि देश के नौजवानों के जवान सपने, बेरोजगाारी की वजह से दम तोड रहे है, प्रतिभा सम्पन्न होकर भी, हाथों में कुदाली, फावडा लेकर गिट्टी तोड रहे हैं, सिर्फ पेट की आग बुझाने के लिए। आज भी हमारे देश में प्रतिभाशाली लाखों नौजवान युवक फुटपाथों पर ही बसेरा कर रहे हैं, दो वक्त कर रोटी के लिए भी तरस रहे है।

सपने तरूण मगर दम तोड रहे,
होनहार कर गिट्टी फोड रहे
प्रतिभाएँ बेछत फुटपाथों पर,
काँदा रोटी भी ना हाथों पर।

समाज में व्याप्त बुराइयों पर प्रकाश डालने का प्रयास करते हुए नशा आदि कुरीतियों का विरोध करते हैं। आज के युग में हर व्यक्ति केवल दूसरे की बर्बादी ही चाहते हैं–

''कुछ लोग चाहते है ऐसी नशा पिलायें
दो चार पीढियों तक हमको होश ना आये
मासूम वे बहुत हैं संभव कि बहक जायें
घर फूँकने स्वयं का अंगार दहक जायें।''

देश में व्याप्त अनाचार से त्रस्त मानव को बदलाव की आशा के प्रति आश्वस्त करते हुए, अँधेरे को रोशनी और उम्मीद से भरते हुए कवि कहता है कि–

देवभूमि यह जन्म दिये है इसने ही अवतार को
ज्योतिस्तंभ बन हरती आयी यह जग के अंधियार को
मुझको है विश्वास कि धरती बांझ नहीं इस देश की
फिर से कोई नया मसीहा देगी संसार को।

(९) पलकों में आकाश (१९७८) : विराट जी कहते है कि आज के समय में किसी को रूलाना तो आसान है, पर रोते हुए को हसाँना मुश्किल है। इसी क्रम में वे कहते है कि अगर हम किसी को सुख नहीं दे सकते तो उसके सुख, खुशी और मुस्कान को छीनने का भी हमें कोई अधिकार नहीं है। इस सन्दर्भ में उनका यह गीत इस प्रकार है–

''ताना औं बाना यदि टूटे
वे तो फिर भी जुड सकते हैं
मन औं दर्पण ही ऐसे हैं
जो न कभी भी जुड सकते हैं
चाहे पाप करो तुम जितना
लेकिन ख्याल रहे बस इतना
कोई भी दर्पण ना टूटे
कभी किसी का मन ना टूटे।''

प्रकृति एवं जल को महत्वपूर्ण बताते हुए कवि उनकी आवश्यकता पर भी गीत लिखते है।

(१०) बूँद बूँद पारा (१९९६) : सन् १९७९ में प्रकाशित बूंद बूंद पारा में जिन्दगी के विविध रूपों को गम्भीर चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया हैं। इसमें युगीन स्थितियों की विपरीतता के बावजूद आस्था के संदर्भो को व्यक्त किया गया है और प्रेम तथा सौन्दर्य जैसे प्रेरक तत्वों की विस्तृत चर्चा कर कवि ने अपने मन की समर्पित भावना व्यंजित की है।

भारत एक धर्मप्रधान देश है यहाँ के लोगों को धर्म के नाम पर आपस में लडवाना सर्वाधिक आसान है। इसलिए कवि ने मजहब के आधार पर लडाई करवाने वालों पर कटाक्ष करते हुए कहता हैं कि –

आ रही है खत की फिर गंध
भूख हिंसा की न होती मंद
नष्ट हो न जाये मनु की नस्ल
शान्ति के साधक! बहुत हुशियार रहना तुम

(११) सन्नाटे की चीख (१९९६) : इस संग्रह में कवि ने उन गुमनाम व्यक्तित्वों को याद किया है जिन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम और देश हित के लिए स्वयं को समर्पित कर दिया, पर जिन्हें कोई जानता नहीं। उनके इस त्याग के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए कवि कहतें हैं कि जिस प्रकार नींव के पत्थर के बिना भवन की कल्पना नहीं की जा सकती, उसी प्रकार उन गुमनाम योद्धाओं के बिना स्वतन्त्र भारत की कल्पना भी नहीं की जा सकती। आज भी अनजान गलियों की धूल में अपना जीवन गुजारने वाले इन योद्धाओं के त्याग को देशवासियों के सामने लाने का प्रयास करते हुए कवि कहते हैं कि–

''रहकर अनाम यौद्धा, बिन शस्त्र-बिन कवच के

अस्तित्व की लडाई जो उम्र भर लडे हैं

वे हाँ नहीं पुरस्कृत,पर लोकमान्य तो हैं

कतिपय बडे-बडों से वे आज भी बडे हैं

वे, जो अजान गलियों की धूल में पडी हैं

उन आबदार मणियों के कद्रदान हम है।''

राष्ट्रभाषा की उपेक्षा पर प्रहार करते हुए कवि कहतें हैं कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय हिन्दी ने ही सारे राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधा था पर आजादी के बाद हम लोगाों ने हिन्दी को अनदेखा करना शुरु कर दिया और अंग्रेजी को पटरानी के सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया।

''हिन्दी अब भी उपेक्षिता है, अंग्रेजी पटरानी है

करुण कहानी रही देश की अब भी करुण कहानी है

यही दुर्दशा आज देश में प्रतिभा की हत्यारी है।''

(१२) गाओ कि जिये जीवन (२००३) : विराट एक ऐसे गीतकार है जो समकालीन परिदृश्य को दृष्टिगत रखकर आधुनिक मनुष्य के जीवनानुभवों को व्यक्त करने के लिए भाषा, भाव,श्शैलीगत प्रयोग करने का साहस रखता हैं। आज के इस मशीनी युग में जीवन को जीना भी एक चुनौती हैं, पर ऐसे संकट और दुविधाग्रस्त समय में हारे-थके मन को विराट के ये गीत सांत्वना और हौंसला देते है, क्योंकि इन गीतों में कवि मानस की संवेदनाएँ समाहित हैं। जीवन के विविधवर्णी प्रतिबिम्ब और सामयिाक प्रसंगों के अक्स गीतों कें बार-बार उभरे हैं, जिन्हें अपनी लेखनी से पारस स्पर्श देकर कवि ने उन्हें स्वर्णिम आभा ही नहीं दी है, अपितु प्रात:कालीन खिले ताजे फूलों की सुगन्ध भी उनमें भर दी हैं।

प्रेम की शर्त पहली रही है यही

व्यक्ति अपने अंह का विसर्जन करे

हो समर्पित, बिना प्रश्न, जरिवाद के

सौंप विश्वास, विश्वास अर्जन करें

बाह्य- अंतर प्रकाशित नहीं आपने

दीप को देहरी जलाया नहीं।

उक्त पंक्तियों में गीतकार ने कहा है कि प्यार करने के लिए जरूरी है कि व्यक्ति बिना अंह को

त्यागे, बिना समर्पण किये सफल नहीं हो सकता। कवि पर्यावरण के प्रति भी सजग और चिन्ताशील हैं। मिट्टी, पानी और वायु प्रदूषित हो चुके हैं। कवि पृथ्वी के भावी विनाश के प्रति चिन्ता व्यक्त करता है। विदेशों में रहने वाले प्रवासी भारतीयों के दर्द को कवि व्यक्त करता है।

(१३) सरगम के सिलसिले (२००८) : यह गीत संकलन राष्ट्रप्रेम से सम्बन्धित है। इस संकलन में १५२ गीतों का संग्रह किया गया है। साहित्य की मंगलाचार पद्धति का निर्वाह करते हुए इस गीत संग्रह में प्रारम्भिक गीत ईश वन्दना के संकलित है। तत्पश्चात जल जीवन के लिए अनिवार्य है। इसलिए नदियाँ भी ईश स्वरूपा ही है। अत: मातृभूमि इन्दौर में प्रवाहमान नर्मदा एवं क्षिप्रा नदी की गरिमा को शब्दांकित करने का प्रयास किया गया है।

नव वर्ष का अभिनन्दन करते हुए शहीदों एवं देशप्रेम के उत्कृष्ट गीतों का संग्रह किया गया है। 'कोई रूदन नहीं सुनता' गीत में कवि कहते हैं कि गीत वेदना से जन्म लेता है,पर श्रोता गीत के स्वर सुनकर मन्त्रमुगध तो होते है, पर गीत में छिपे गायक के अव्यक्त रूदन को कोई नहीं सुनता है। उदाहरण:-

''गीत सुनते सभी गायक का
कोई रूदन नहीं सुनता है।
सीने में सिसकियाँ दबाकर
गीत अधर पर लाया करता।
कौन वेदना उसकी लेकिन
अपने अन्तर में गुनता है।''

विकास के इस युग में भी बाल मजदूरी करने को मजबूर अपना बचपन खो चुके बच्चों के प्रति संवेदना प्रकट करते हुए श्री विराट जी कहते है कि -

''अपना बचपन गवाँ गये बच्चे
कितनी जल्दी बुढा गये बच्चे।''

(१४) ओ, गीत के गरुड (२०१२) : संकलन में८१ गीतों का संग्रह किया गया है।

निष्कर्ष : सन् १९६९ में प्रकाशित संकलन स्वर के सोपान और ओ मेरे अनाम विराट के गीतात्मक रुझान और चिन्तन के प्रारम्भिक चरणो को प्रदर्शित करने वाले संकलन हैं। इन संग्रहों में कवि अत्यधिक भावुकता के परिवेश में जहाँ एक ओर प्रेम, सौन्दर्य और दर्द का निरूपण करते हैं, दूसरी ओर इनमें राष्ट्रीयता और नवनिर्माण के विविध रूपात्मक संदर्भ भी प्रकट हुए हैं। इस अध्याय में विराट के गीतों

में समसामयिक चिन्ता एवं चेतना को विविध दृष्टिकोण से देख सकते हैं। गाँवों का पिछडापन, किसानों की विपन्नता, श्रमिकों का दोहन, लालफीताशाही, महँगाई, बेरोजगारी, जातिवाद, पश्चिमी सभ्यता का अन्धानुकरण, राष्ट्रीय भाषा की उपेक्षा, राजनीति का पतन, दुख सुख का विषम अनुपात, पारिवारिक बिखराव, अनास्था- निरपेक्षता, अविश्वास, युवाओं में नशा प्रवृत्ति, आतंकवाद, धार्मिक उन्माद, साम्प्रदायिक वैमनस्य, कामचोरी, उपभोक्तावादी संस्कृति, आधुनिक जीवन का दम्भ, निरंकुश विधायिका आदि सम्पूर्ण स्थितियों का सूक्ष्म अन्वेषण कर कवि अंत में एक आशावादी स्वर जगाता है। विराट जी की रचनाओं में एक सपाटबयानी है, चोट करने की क्षमता है, प्रकृति श्रृंगार की वर्णनात्मकता है। अध्यात्म का आत्मपरक विराट- गीतों का भाव-वैभव, रस- लालित्य तथा भाषिक सौष्ठव इनके गीतों में दिखाई देता हैं। विराट का गीतबोध जीवन और उससे जुडे युग सत्यों को पूरी तरह बाँधे है। संवेदनाओं की वैचारिक बुनावट में वे पूर्ण निपूण है। कवि पहले हर पक्ष, हर दृष्टि से तथ्यों की कटाई करता है, समय की छलनी में उसे छानता है, युग संदर्भो में भावों की धुलावट कर व्यक्ति और समाज से जुडे सरोकारों को बुनकर, कुशल शिल्पी बनकर उन्हें तराशता और गढता है। समस्याओं के प्रति उनकी यर्थाथवादी दृष्टि परिलक्षित होती है। सामाजिक चेतना के प्रति उनकी सजगता संघर्ष का रास्ता दिखाती है। उनके गीतों में सामाजिक परिवर्तन की अदम्य आकांक्षा मुखरित हुई है। वे अवतारवाद और ईश्वर की सत्ता पर विश्वास करते है, पर विश्वास तो करते है, पर व्यक्ति को स्वयं पर विश्वास करने के लिए भी प्रेरित करते हैं क्योंकि ईश्वर भी उसी की सहायता करते हैं जो अपनी सहायता स्वयं करते हुए दूसरों पर निर्भर नहीं रहते हैं। कवि विराट ने जीवन के सुख-दुख, राग-विराग, प्रेम-विरह के गीत गाते रहने पर भी देश एवं समाज की उपेक्षा नहीं की हैं। देश के प्रति अपना दायित्व निभाते हुए - युग चेतना के स्वर उनके गीतों में मुखरित होते रहे है।

गीत की इस सनातन सामर्थ्य से चन्द्रसेन विराट भी प्रभावित हुए। अपने मन की प्रवृतियों के अनुसार अन्य विधाओं की अपेक्षा कठिन होते हुए भी गीत विधा उन्हें अपने अधिक निकट और अनुकूल लगी। इसलिए उन्होंने गीत को अपनी रचना शक्ति समर्पित की। अपनी रचना प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए उन्होंने स्वर के सोपान की भूमिका में लिखा है- मेरे गीतकार के मन के तहखाने में न जाने एक बाँसुरी क्यों है? सासों की वायु पर बजना इस बाँसुरी का स्वभाव हैं, नियति है। गीत के प्रति मेरी आस्था अटूट है, यह मेरे कवि मन की प्रकृति हैं। अन्य विधाओं ने इतने लालच दिये, प्रतिष्ठित करने के कौल भरे, मगर मेरा कवि मन अभी भी उस गीत वाली बाँसुरी का आशिक है। विराट के ये उद्गार बताते है कि वे अन्य

विधाओं की ओर गतिशील हो सकते थे, किन्तु उनके मन की स्वाभाविक प्रकृति को गीत ही प्रिय लगें, इसीलिए उन्होंने अपनी अटूट आस्था गीत को समर्पित की है।

किन्तु कुछ समय बाद ही श्री विराट के काव्य ने पुन: एक ओर मोड लिया और युग बोध के प्रति अपने दायित्वों का अनुभव करते हुए उन्होंने गीत की अपेक्षा गजल जिसका नाम उन्होने मुक्तिका रखा है; को महत्तव दिया और उसके लेखन में रत हो गये थें। निर्वसना चाँद्नी के आत्म कथ्य में ये बाँतें स्पष्ट रूप से स्वीकार की है कि गजल युगबोध की काव्यात्मक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम हैं, साथ ही अभिव्यक्ति के सामान्यीकरण की प्रवृति गजल में गीत की अपेक्षा अधिक होती हैं। गजल के इसी तेवर का मैं आशिक हूँ और चुंकि अभिव्यक्ति के सामान्यीकरण के प्रति मेरी लालसा हैं, अत: गजल की पीठिका पर ही मुक्तिका हिन्दी गजल के प्रति मेरी समस्त गीतात्मक आस्था संघर्षशील हैं।

इसका तात्पर्य यह है कि पहले गीत के प्रति विराट की आस्था इतनी प्रबल थी कि उन्होंने उसके लिए अन्य विधाओं का भी तिरस्कार कर दिया, किन्तु बाद में गीत की इसी आस्था ने मुक्तिका को स्वीकार किया और वह भी यह मानकर की विराट जो कुछ कहना चाहते हैं उसमें गीत की अपेक्षा मुक्तिका ही सक्षम हैं। विराट की यह उलझन यह सोचने को विवश कत देती है क्योंकि इतना स्वीकारने के बाद उन्होने फिर से गीत लिखे। इस अनुभूति के बाद भी वे गीत और गजल दोनों को समानान्तर लेकर चले हैं। प्रतीत होता है कि गीत के प्रति उनकी टूटती आस्था फिर अपने पूर्ववत अटूट स्तर पर पहुँच गई है और मुक्तिका लेखन इसका सहयात्री बना हैं।

वस्तुत: विराट गीतकार है– एक समर्थ गीतकार, जिन्होने नवगीत की अपनी साधना से वास्तविक अर्थ प्रदान किया और हिन्दी नवगीत की साठोतरी परम्परा को गति प्रदान की। अत: श्री नीरज के शब्दों में कहा जा सकता है कि– गीत के लिए पूर्णत: समर्पित एक उज्जवल हस्ताक्षर । आडम्बरों एवं औपचारिकता से परे मानवता के सरल रूप का समर्थक गीतकार । किसी वाद से नहीं जुडा, किसी खेमें में शामिल नहीं हुआ, किसी मठ में प्रवेश नहीं किया उसने। एकाकी अलख जगााया हैं। इस प्रकार विराट से गीत और गीत से विराट उपकृत हुए हैं। दोनों को भिन्न करना मुश्किल हैं। कवि स्वयं कहता हैं–

सुन विराट, तू लाख कहे

पर मुझको है मालूम कि निश्चित तुझसे गीत नही छूटेगा।

गीत के प्रति ऐसा समर्पित भाव विराट के कवि व्यक्तित्व का महत्तवपूर्ण बिन्दु है। चन्द्रसेन विराट एक स्वाभिमानी गीतकार है। कर्म से यांत्रिक और धर्म से गीतकार। विराट के व्यक्तित्व की ही विशिष्ट

विशेषता है कि बौद्धिक परिवेश और भावात्मक सागर जैसे भिन्न क्षेत्रों को न केवल एक माना अपितु एक के कार्य में दूसरे का प्रचुर सहयोग भी लिया। ऐसा माना जाता है कि कवि भावुकता में शिल्प का ध्यान नही रखता, पर विराट का यांत्रिक व्यक्तित्व इस कमी को पूरा कर देता हैं। उनके गीत और मुक्तिकाएँ शिल्प की दृष्टि से इसलिए कमजोर महसूस नहीं होती। सम्भवत: यांत्रिक रूप से कर्म करते हुए भी उनका कवि व्यक्तित्व वहाँ की कमी को भी पूरा करता होगा और संवेदना रहित स्थलों पर अपनी संवेदना उडेलता हुआ मनुष्य के मूल रूप को बताता होगा। उनके व्यक्तित्व की इस विशेषता ने उन्हें लोकप्रिय बनाने में बहुत सहयोग दिया है तो किसी ने उसे नूतन अर्थ में स्वीकार कर अन्यान्य विषयों पर अपनी लेखनी चलाई । विराट की गजलें भी दोनो रूपों में उपलब्ध होती हैं और सारी भीड के बीच उन्हें इस दिशा में उन्हें लेखनी चलानें के कारण उपलब्धियाँ भी प्राप्त हुई हैं । इस सन्दर्भ में श्री भवानी प्रसाद मिश्र ने विराट के काव्य संकलन किरण के कशीदे में लिखते है कि – गीतों में प्रयोगवादी भी कम नहीं हुए हैं। बहुत लोग प्रयोग कर रहे हैं। प्रयोगों की परम्परा लगभग है ही नहीं बलबीरसिंह रंग को छोड दे तो कहने लायक गजल किसी की कलम से नहीं निकली, पर उनकी हिन्दी गजल में भी कसर यह है कि वह हिन्दी गजल कम, उर्दू गजल ज्यादा है। इस कमी को ठीक ढंग से यदि किसी ने पूरा किया है, तो वह चन्द्रसेन विराट ने।

किन्तु जैसा कि पूर्व में ही वर्णित किया जा सकता है कि उन्होंने गीत अधिक लिखें है, ग़ज़लें कम। ऐसी स्थिति में उन्हें गजलकार न कहकर मूलत: गीतकार कहना अनुपयुक्त नहीं होगा। श्री भवानी प्रसाद मिश्र ने अपने उपर्युक्त मत में ग़ज़ल को गीत का ही पर्याय माना हैं। दोनों ही निजी अनुभूतियों पर आधारित लयात्मक रचनाएँ है, जो प्रबल भावात्मकता और वैयक्तिता से युक्त, संक्षिप्त, स्वतन्त्र और मुक्तक होती हैं। दोनों में अन्तर सिर्फ इतना है कि गीत में ही एक विचार, भाव या परिस्थिति का आद्यन्त चित्रण होता हैं, जबकि ग़ज़ल या मुक्तिका का प्रत्येक पद स्वतंत्र होता है। गीत में प्रत्येक पद की पंक्तियाँ दो से अधिक होती हैं, जबकि ग़ज़ल का प्रत्येक शेर दो पंक्तियों का होते हुए भी अपनी स्वतंत्र इयता रखता हैं अर्थात गजल के चन्द शेर से अधूरेपन का एहसास नहीं होता जबकि गीत का एक अंश सुनने पर अधूरेपन का एहसास होता है।

गीत के प्रति समर्पित श्री चन्द्रसेन विराट अपने स्वभाव की मिलन सरिता से, सरलतम् व्यक्तित्व से, अनवरत साहित्य साधना से तथा स्वर के सम्मोहन से देश व्यापी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। जीवन के कठोर यांत्रिक यर्थाथ को भोगते हुए भी विराट के गीतों की रसधारा आस्था, शक्ति, निष्ठा, ताजगी, उल्लास और सहज प्रेषणीयता से सम्बद्ध होकर निरन्तर प्रवाहमान रही हैं।

गजल संग्रह :

(१) निर्वसना चाँदनी : सन् १९७० में प्रकाशित निर्वसना चाँदनी में कवि की अनुभूतियों को प्रखरता तथा विस्तृति मिली हैं। सुख के सूरज निर्वसना चाँदनी तक तय की हुई जीवन यात्रा सुख-दुख के अनेक पडावों पर ठहरती हुई भी गतिशील हैं। इसमें जीवन के अनेकानेक संदर्भ सार्थकता के साथ अभिव्यक्त हुए है। सौन्दर्य दृष्टि, रागात्मकता, सुख- दुख की अभिव्यक्ति, प्रकृति की विराट अभिव्यंजना के साथ ही महानगर बोध और आस्था के संदर्भ आदि मिलकर प्रस्तुत संकलन को श्रेष्ठता प्रदान करते हैं।

इसमें कवि की अनुभूतियों की प्रखरता तथा विस्तृति मिलती है. सुख के सूरज निर्वसना चांदनी तक तय की हुई जीवन- यात्रा सुख-दु:ख के अनेक पडावों तक ठहरती हुई भी गतिशील है। इसमें जीवन के अनेकानेक संदर्भ सार्थकता के साथ अभिव्यक्त हुए है. भवानी प्रसाद मिश्र ने लिखा है कि -

''हिन्दी में ग़ज़ल की परम्परा लगभग नहीं के बराबर है। भाई रंग को छोड दें तो कहने लायक गजल किसी की कलम से नहीं निकली, पर उसकी हिन्दी ग़ज़ल में भी कसर यह है कि हिन्दी गजल कम उर्दू गजल ज्यादा है। इस कमी को ठीक ढंग से अगर किसी ने पूरा किया हैं तो वह चन्द्रसेन विराट ने। एक कठिन काम हिन्दी ग़ज़ल के क्षेत्र में यह किया कि बहरें उर्दू की लेकर भी उच्चारणों में उर्दू की तरह दीर्घ को ऱ्हस्व कदाचित ही पढना पडता है। रदीफ काफिये भी नये-नये चुने हैं और उन्हें खूबी से निभाया हैं।''

(२) आस्था के अमलतास : सन् १९८० में प्रकाशित आस्था के अमलतास में सौन्दर्य, प्रेम एवं दर्द की त्रिवेणी में बहती रसधारा जीवन के अनेकानेक प्रसंगों, उसकी छोटी से छोटी घटना उसके सुख-दुख का एक एक प्रकरण प्रस्तुत करती है। मिथ के अनेक स्तरीय बहुल प्रयोग कवि के काव्य -कौशल की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। संघर्ष शील मनुष्यों के विषय में वे कहते है कि-

''चोट समय की खाकर देखों टूट गये है कितने लोग
साथ चले थे लेकिन पीछे छूट गये है कितने लोग।
कौन हिसाब लगाकर देखे कितनों से रूठा जीवन
और कभी अपने जीवन से रूठ गये हैं कितने लोग।
सुख की खुशफहमी में अक्सर दुख ही भोगा लोगों ने
अमृत के धोखे में विष भी घूँट गये हैं कितने लोग।''

(३) कचनार की टहनी : उन्होंनें उर्दू गजल के छन्द एवं संरचना को स्वीकार करते हुए हिन्दी गजल को हिन्दी की सांस्कृतिक पीठिका पर तराश कर एक विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान किया। मानवीय जीवन की विवशताओं को चित्रित करते हुए गजलकार कहता है कि–

'' हर दशा में महफिलों का हृदय बहलाना पडा
रो पडे हसँते हुए रोते हुए गाना पडा
मंच की हर नाटिका जारी रहे बस इसीलिए
नायकों से विदूषक तक पात्र अपनाना पडा।''

(४) धार के विपरीत : हिन्दी गजल को मुक्तिका नाम देने वाले गजलकार ने हिन्दी की बहुआयामी क्षमता को दर्शाने हेतु मुक्तिका के काव्य प्रयोगों को समर्पित रहे।

''आप ही कहिए उन आश्वासनों का क्या हुआ
छोडिये किशमिश गरीब के चनों का क्या हुआ
स्वप्न तो पक्के मकानों के दिखाए थे कभी
हाय कच्चे झोपडों का , आँगनों का क्या हुआ।''

(५) परिवर्तन की आहट : इस संग्रह में उनकी नवीन मुक्तिकाएँ संग्रहित है–

'' पाने का देवत्व चला था, किन्तु दनुजवा हाथ लगी
क्या विडम्बना है यह मानव, मानव भी अक्सर न रहा
अनाचार, बर्बरता, शोषण,जुर्म, घृणा, अन्याय, समर
लगता बीसवी सदी में दुनिया का ईश्वर न रहा।।''

(६) लडाई लम्बी है : उर्दू पारम्परिक गजलों से अलग, विशिष्ट हिन्दी सांस्कृतिक पीठिका से लिप्त,कहने के तेवर, शिल्प में श्शालीनता, शैली की शास्त्रीयता, मिथकों का मार्दव समेटे हुए उनकी मुक्तिकायें स्वयं बोलती है। वे लिखते है –

''हिन्दी गजल की बात चली तो तुम्हें विराट
उद्‌धृत करेंगें लोग मिसालों के नाम पर''
कृषक की दुर्दशा पर कवि लिखता है:–
''दिखता खडा अकाल सामने मुँहबाये
होगा हाहाकार कि मेघा पानी दे

कृषक दुखी माथे पर हाथ धरे बैठे
करते विचार कि मेघा पानी दे।''

(७) न्याय कर मेरे समय : इस संग्रह में उनकी गजलें समय के यथार्थ को समग्रता के साथ पकडने और उसकी भावनात्मक अभिव्यक्ति में विश्वास रखती है। प्रेम के बदलते स्वरूप पर वे लिखते है-

''पैर राहु ने पकड रखे हैं,
केतु सिर पर सवार है भैया
प्यार कहते है आजकल जिसको
वसना का विकार है भैया।''

(८) फागुन माँगे भुजपाश : इस संग्रह की गजलों में बीसवी सदी के वैचारिक परिवेशों के अनुरूप भारतीय जीवन के प्रतीकों, बिम्बों और मिथकों के प्रयोगों से नितान्त नवीन क्षितिज उद्घाटित किये है। जैसे रेत बन्द मुठ्ठी से भी फिसलती जाती है, वैसे ही जिन्दगी को पकडने की कोशिश में वो हाथ से निकलती जाती है।

''ये रोज-रोज उम्र गुजरती चली गई
ज्यों रेत मुठ्ठियों से बिखरती चली गई
जिस रोज जन्म हुआ उसी रोज से सतत
इस जिन्दगी को मौत कुरतती चली गई।''

(९) इस सदी का आदमी : समय की नब्ज पर उँगली रखते हुए यथार्थ को समग्रता में ग्रहण करते हुए आज के मनुष्य के भावों, अनुभावों, वेगों- सवेंगों को विशिष्ट शैली शिल्प के साथ व्यक्त करती हुई उनकी हिन्दी ग़ज़लों का सफर शुरू है।

(१०) हमने कठिन समय देखा है : स्वभावगत मूल हिन्दीपन के साथ तत्समी संस्कारयुक्त भाषा, भाव की बनावट ऐसी हो, जिसमें हिन्दी की तीनों भाषा- शक्तियाँ, पूर्ण सौष्ठव के साथ प्रयुक्त हों जो गठी हुई प्रभविष्णु एवं विशिष्ट हिन्दी व्यक्तित्व के साथ उसकी अस्मिता को उजागर करती हुई प्रतीत होती है।

''कालचक्र का नित आवर्तन होता जाता है
परिवर्तन पर फिर परिवर्तन होता जाता है।''

उपसंहार : इन संकलनों के अतिरिक्त अन्य अनेक स्थानों से भी विविध पत्र-पत्रिकाओं में भी विराट जी के गीत प्रकाशित हुए है और निरन्तर होते आ रहे हैं। इस प्रकार लगभग ६० दशकों से अनवरत साधनारत विराट प्रसिद्ध गीतकार नीरज के शब्दों में कृतिव से विराट ही बने हुए है।

श्री चन्द्रसेन विराट के गीत अनुभूत जीवन की ही अभिव्यक्ति नहीं करते, बल्कि उस अभिव्यक्ति को आधुनिकता के विविध आयामों से अलंकृत कर वर्तमान के प्रति अपने दायित्व को निभाते है। उनके गीतों में गीति तत्वों की समस्त विशेषताएँ अपने सहज रूप में विद्यमान है। उन्होने जहाँ परम्परा को स्वीकारते हुए शाश्वत मूल्यों के प्रति अपनी भावनाएँ समर्पित की है, दूसरी ओर आधुनिक चेतना के स्वरों को मुखर कर परिवर्तित मानव मूल्यों को स्वीकार करते हुए परम्परा के परिष्कृत रूप से नवता का सहज सम्मिलन कराया है। इस प्रकार उनके काव्य में केवल भावुकता ही नही, बौद्धिक विकास के चिन्ह भी स्पष्ट रूप से दिखाई देते है। उनके गीतों में एक ओर ह्रदय की कोमलतम अनुभूतियों का प्रकटन हुआ है, तो दूसरी ओर कठोर वास्तविकताओं से साक्षात्कार करने वाली स्थितियों का चित्रण भी। मनुष्य के आधुनिक तनाव, कुठाएँ, संशय, अभाव एवं उसके सभी संवेग उनके सही परिवेश में कलागत ताजगी के साथ, सहजता के साथ अभिव्यक्ति पायें- यही विराट के गीतों का प्रयत्न है।

४.२ विराट के गीतों की प्रवृतियाँ :

विराट के गीतों में अनुभूतियों की रंगच्छायाओं को उद्‌घाटित करते हुए श्री ओमप्रभाकर ने लिखा है कि विराट के गीतों में उपलब्ध होता है - आज के आदमी का अस्तित्वबोध, उसकी निजी पीडाएँ, समूह प्रश्न, प्रेम-विराग, यांत्रिकता के दबाव में छटपटाती मानवीय संवेदना, कुंठा, दामपत्य जीवन के अछूते जीवन्त क्षण, अपराजेय मनुष्य का उदग्र अंह, मानवीय रिश्तों के बीच अनकही टूटन, शाश्वत आस्था, जातीय प्रकृति के बहुवर्णी धडकते चित्र आदि। इस प्रकार विराट के काव्य की विषयवस्तु विविधात्मक है, किन्तु हर जगह संतुलन एक सा, और वह भी उत्तरोतर प्रगति की ओर गतिशील। उन्होंने जीवन के विविध पक्षों का रूपायन किया है, जिसमें गोपाल दास नीरज के अनुसार-अनुभूति की तीव्रता के साथ अभिव्यक्ति के संयम का एक साथ निर्वाह हुआ है। यह निर्वाह कुशल कवि के लिए ही संभव है और विराट ने यह उपलब्धि अर्जित की है। वस्तुत: विराट के गीतों में विराटत्व है, जो अपनी सहजता से स्पष्ट रूप से व्यंजित होता है ।

वे प्रेम और सौन्दर्य के प्रति सम्मोहित तथा मुख्यत: दर्द के नायक है। यह दर्द कहीं निजी क्षेत्र की अनुभूतियों पर आधारित है, तो कहीं उसे व्यापक सामाजिक आधार मिला है। सामाजिक तथा राजनीतिक

विसंगतियों की चर्चा करते हुए उन्होंने स्वस्थ मूल्यों को महत्व दिया है और समाज तथा युग को परिष्कृत करने के लिए अपनी अमर आस्था समर्पित की है; इसलिए जहाँ अँधेरे की पर्तो को खोलने के समर्थ प्रयत्न प्रतिबिम्बित हुए है, दूसरी ओर आस्था के विराट संदर्भ पूरी श्शक्तिमता से उभरकर मनुष्य को शक्ति और सामर्थ्य से सम्पन्न करते है।

वस्तुत: विराट के गीतों का क्षेत्रफलक विराट है और उपर्युक्त तमाम स्तरों का तालमेल उनके गीतों को समर्थता प्रदान करता हुआ उन्हें युग धर्म का ईमानदार से निर्वाह करने वाला साहित्यकार सिद्ध करता है।

सौन्दर्य निरूपण : विराट के गीतों में सौन्दर्य निरूपण की प्रवृति प्रारंभ से ही गतिशील रही है। सौन्दर्य चाहे चेतन का हो या जड का,कवि उसके चित्रण में रमा रहता है। वह सौन्दर्य का मुग्ध चितेरा है। यह सौन्दर्य आन्दोलित कवि मन की प्रेरणा बनकर जीवंत हुआ है। सौन्दर्य का रूपाकंन करते समय उसके मन में पूत भावनाएँ ही जन्म लेती है। इन्ही भावनाओं को कल्पना की भव्यता के साथ जोडता हुआ कवि कह उठता है।

केश कंधों पडे अधखुले, मेघ ज्यों साँवले- साँवले
सांस छूकर तुम्हारी लगा, आ गये गंध के काफिले।

(निर्वसना चांदनी २९-३०)

वह रूप की आँखों से आँखें मिलाकर किसी तरल रश्मि की तरह सौन्दर्य का पान करता हुआ और उसे व्यापकत्व प्रदान करता हुआ कहता है-

रूप ये, रंग ये, नियति के दृश्य सब
आप के ही विशद वेश विन्यास है।
आप ही संदली वन्य बतास है।
मधुरिमा है, मधुर मुग्ध मधुमास है
आप ही कल्पना,आप ही सत्य है,
एक संकल्प है, एक विश्वास है।

(आस्था के अमलतास-१५)

इसी संकल्प और विश्वास के सहारे कवि प्रेम के आदर्श स्वरूप को महत्व देता है। सौन्दर्य के इसी तरह का भव्य चित्रांकन रूप जल से घुली हुई आँख, मैने दर्शन पा लिया, रोशनी ले लूँ, जूडे में पीला गुलाब, देह का रंग, बिस्तर पे चांदनी, मेघ फिर छाने लगे, आदि गीतों में समर्थता से हुआ है।

इसी क्रम में कवि ने प्रकृति के अनेकानेक रमणीय चित्रों का अंकन किया हैं। वस्तुत: विराट के काव्य में नारी सौन्दर्य और प्रकृति सौन्दर्य का निरूपण एक दूसरे के समानान्तर नहीं, समाश्रित होकर प्रस्फुटित हुआ है। प्रकृति सौन्दर्य का निरूपण विविध रूपात्मक है। कहीं वह शुद्ध चित्रण या आलंबन रूप में है, कहीं आलंकारिक रूप में प्रकृति का उपयोग हुआ है तो कहीं जीवन के अन्यान्य सन्दर्भो की प्रतीक बनकर प्रकृति रूपायित हुई है। कहीं प्रकृति के कमनीय रूप का तो कहीं उसके भीषण रूप का चित्रण मिलता है।

जहाँ एक ओर प्रकृति सौन्दर्य का निरूपण परम्परागत रूप में हुआ है यथा पूनम की रात का चित्रण दृष्टिगत है-

चाँद हंस जैसा लगता है, तारों के मोती चुगता है,
नभ हैं जैसे मानसरोवर, भरा हुआ चंदा का पानी।

(स्वर के सोपान-१०२)

तो दूसरी ओर प्रकृति के रौद्र रूप का भी वर्णन किया गया है-

सूरज ने क्रोध किया/धूप तिलमिलाई।
दूर्वा का मुख उतरा/ धरा तिलमिलाई।

(किरण के कशीदे- १५)

'ओ मेरे अनाम में' संग्रहीत प्रणय निमुग्धा चांदनी एवं सांझ के चित्र कवि के दुख-सुख के भागी बनकर व्यंजित हुए हैं। दोपहर, श्शाम, सुबह, चांदनी, बादल के अनेकानेक चित्र विराट के काव्य में उपलब्ध होते है। 'प्यारा मृग सोने का' में सूर्यास्त के अनूठे बिम्ब को प्रस्तुत किया गया हैं। पीले चावल द्वार पर संग्रह में संध्या का अनुपम चित्र इस प्रकार अंकित हुआ हैं-

सिमट गये किरणों के कोश, शाम जामुनी हुई।

(पीले चावल द्वार पर-२१)

इस प्रकार नारी सौन्दर्य का निरूपण हो या प्रकृति सौन्दर्य का चित्रण कवि ने उस सौन्दर्य के प्रति अपनी सहज आसक्ति प्रकट की हैं और यह भव्य आसक्ति भव्य कल्पनाओं को समग्रता एवं जीवन्तता से प्रस्तुत करती हुई काव्य को मुखरता और रागमयता प्रदान करती हैं।

प्रेम निरूपण : प्रेम का स्वरूप अनिर्वचनीय है। इसका व्यक्त रूप कवि विराट की सामर्थ्य का परिचायक है। कवि का प्रेम चित्रण उदात्त हैं। कही भी वह भौतिक विचलन से त्रस्त नहीं हैं, हृदय से जुडे

होने के कारण ही प्रेम में पवित्रता और गहराई है। उनकी प्रेम सम्बन्धी भावनाएँ पवित्र विचारों से युक्त हैं। प्रेम को वह जीवन का प्राणतत्व मानता हैं और इसलिए उसने उसे निरन्तर विस्तार देने का समर्थ प्रयत्न किया हैं। प्रेम निरूपण में उन्होंनें मिलन और विरह दोनों स्थितियों के चित्र उकेरे है। उनके काव्य में हर स्थिति जीवन्तता के साथ अभिव्यक्त हुई है। प्रेम का रूवरूप निरूपण करता हुआ लिखता है कि–

न गाते थकेंगें, कभी कंठ अपने।

नहीं अन्त होगा प्रणय की कथा का।।

सृजन शक्ति है प्यार परमात्मा की।

वही है महाकाव्य मनु की व्यथा का।।

(भीतर की नागफनी–१२)

यद्यपि स्वर के सोपान में प्रेम निरूपण में कवि की दृष्टि परम्परागत छायावादी भावुकता से ओतप्रोत रही है, परन्तु बाद के संकलनों में नवीन भाव बोध को नवीन अभिव्यक्ति शैली का रूपाकार मिला हैं। प्रारम्भ के गीत नई उमर के गीत जैसे है, जबकि बाद के गीत दृष्टि विकसित होने के सोपान सिद्ध होते है। इसलिए हर स्थिति में प्रिया के भली लगने पर कवि अपनी पवित्र भावनाओं को आकार देता हुआ कहता हैं–

जन्म जन्म को ब्याह चुके हैं अपने मन

तन से हम भांवर न फिरे तो भी क्या है।

(ओ मेरे अनाम–४५)

परमात्मा की इस शक्ति को कवि पूर्ण पवित्रता और मर्यादा के परिवेश में प्रस्तुत करता है। वह प्रणय पथ पर डूबकर सागर पार करने की उपलब्धि सहेजता हुआ कहता है।

मन से जिसको भी प्यार किया, मन के भीतर उसको पूजा,

होठों से कह देने वाली, प्रेमी की जात नही होती।

(निर्वसना चांदनी २६)

प्रिय से वियुक्त स्थिति का चित्रण करते हुए उसे लगता है कि –

एक तुम ही नही, तो हमारा शहर

अब पराया शहर है हमारे लिये,

आंसुओं से चुकाते चले जा रहे

जिन्दगी एक कर है हमारे लिए।

(आस्था के अमलतास-३८)

प्रेम में स्मृति के सन्दर्भो की अभिव्यंजना करते हुए कहता है-

उजड चुका है श्शहर सपने का

वैभव का न पवन बहता है

बस फकीर है एक याद का

इसके खण्डहर में रहता है।

(दर्द कैसे चुप रहे-१४)

निष्कर्षत: विराट के काव्य का यह पक्ष निजी अनुभूतियों पर आधारित है, अत: उसमें वैयक्तिकता प्रबल है। प्रेम और तद्जनित वेदना उसके मौन को मुखरित करती है और वह समग्रता के साथ इसके निरूपण में अपनी तल्लीनता प्रकट करता है।

युगीन स्थितियां और आधुनिकता के सन्दर्भ : श्री विराट के काव्य की प्रथम प्रवृति प्रेम, सौन्दर्य एवं व्यक्तिगत दर्द के उपाख्यान से सम्बन्धित है। यह प्रवृति जितनी शक्तिमता के साथ उभारी है, उतनी ही श्शक्तिमता के साथ युगीन स्थितियां और आधुनिकता के सन्दर्भो को सहेजती प्रवृति भी उभरी है। विषय क्षेत्र को वैविध्य देते हुए कवि कहता भी है-

एक तुम्हारा रूप नहीं है केवल कथ्य प्रिय।

और विषय भी इस जीवन के गाने लायक है।

(पीले चावल द्वार पर-७१)

इस क्रम में कवि ने आधुनिकता के विविध आयामों को उद्घाटित कर युगीन स्थितियों की चर्चा करते हुए मानवीयता के दर्द को उकेरा है। प्रेम एवं सौन्दर्य के क्षेत्र में उनका दर्द सीमित था, किन्तु यहाँ सामाजिकता के विराट संदर्भो को व्यापक फलक पर प्रस्तुत करता है। स्वयं कवि ने भी कहा है-

जो दर्द हे चिरचन,बांधा है गीत में

सबकी व्यथा है,केवल मेरी व्यथा नहीं।

(आस्था के अमलतास-८०)

अत: निज की पीडा को युग की पीडा से जोडकर कवि का चिन्तन क्षेत्र विस्तृत हुआ है, जो दक्ष प्रतिभा, युग धर्म के प्रति उसके सम्यक निर्वाह और साहित्यकार की जागरूकता को प्रकट करता है। इस प्रकार अन्तर में समाया दर्द व्यष्टि से समष्टि की ओर गतिशील होकर स्वर की सीमा को विस्तार देते हुए कवि के चिन्तन के आयामों को प्रसार देता हुआ व्यापक मानवीय प्रवृति का सफल प्रस्तुतिकरण सिद्ध होता है।

युग पीडा से साक्षात्कार की स्थिति में कवि को स्पष्ट लगता है कि यांत्रिकता मनुष्य पर हावी हो गई है। शोषण के चक्र ने मनुष्य की अस्मिता को तहस-नहस कर डाला है। ऐसी स्थिति में-

सृजन उदास बुझा सा बैठा, कला प्राचीरों की दासी है,
मांस पिण्ड भर हृदय रह गया, सच्चा अन्तकरण नहीं है।

(स्वर के सोपान-२०)

सच्चे अन्तकरण के अभाव में ही जलते दीप को सभी स्वीकार करते है, जबकि बुझते दीपक को कोई सहारा नहीं देता। जिन्दगी में कोई किसी का नहीं हैं। जिन्दगी अंधा कुआ बन गई है, इसी स्वरूप पर चिन्तन करते हुए कवि कहता है कि-

जिन्दगी की सुरंगें घुमावों भरी,
कोलतारी अंधेरा यहाँ से वहाँ,
आदमी के दुखों के समाधान को,
खोजते आ गये हम कहाँ से कहाँ।

विपरीत परिस्थितियों और अनिश्चितता के वातावरण में मानव की छटपटाहट बढती ही चली आ जाती है। यांत्रिक युग का अति बौद्धिकता से ग्रस्त आधुनिक बोध उसे उद्धेलित कर देता है। अहं अपनी परिस्थितियों से असन्तुष्ट होकर कह उठता है-

आदमी से आदमी के बीच में
एक जो ऐसी बर्फ जो पिघली नहीं
शेष आदिम गंध वह इतिहास में
यह सदी बदली, मगर बदली नहीं।

(बूँद-बूँद पारा-१३)

ऐसी स्थिति में आधुनिक सभ्यता ने मानव को खूँखार भेडिया बना दिया है। वह इस सच्चाई को बयान करता हुआ कहता है–

सभ्यता के पथ पर यह आदमी की यात्रा,

देवताओं से शुरू की, वहशियों तक आ गये।

(आस्था के अमलतास–३५)

यही कारण है कि आज मनुष्य तृष्णाओं के मृगजल की तलाश में भटक रहा है। वह अपने संदर्भो से भटककर यंत्रवत् खोखला होता जा रहा है। भय, संकट, संशय, अविनय और अज्ञान मनुष्य के चतुर्दिक अपना जाल कसे हुए सन्नद है। विभाजित व्यक्तित्व ने अस्तित्व के संकट को और भी गहरा दिया है। महानगरीय सभ्यता इस टूटन को और भी बढा रही है। कवि कहता भी है–

सिर दतर में, पांव भीड में, धड कहवाघर में,

महानगर ने खण्ड–खण्ड में बांट दिया मुझको ।

(भीतर की नागफनी–३५)

वस्तुत: बौद्धिकता की अतिशयता और यांत्रिक सभ्यता ने देवता की प्रतिमा से निकलते स्वरों को अवरूद्ध कर दिया है, इसलिए आधुनिक जीवन संदर्भो में –

एक सन्नाटा शहर पर जम गया,

जो जहाँ पर जिस जगह पे था, थम गया।

कांपता सा रह गया पिघला तिमिर,

शून्यता का बोध मन में रम गया।।

(निर्वसना चांदनी –११)

संत्रस्त करने वाले सामाजिक संदर्भो की ही तरह ही राजनैतिक स्थितियाँ भी है। कवि राष्ट्रीयता के मानद मूल्यों को जब तहस–नहस होते देखता है, तो उसे अपने भीतर विद्रोह जन्म लेता नजर आता है। राजनैतिक क्षेत्र में फैली युगीन विसंगतियों को व्यंग्यात्मक रूप में स्पष्ट करते हुआ कहता है कि–

आप अनुमति दें अगर तो इस देश की चर्चा करें,

जो हमें उपलब्ध, उस परिवेश की चर्चा करें,

मुठिठयों में भीख अपनी और तन पर चीथडे,

लूट में जो रह गया, उसश्शेष की चर्चा करें।

(बूँद-बूँद पारा-१३)

कवि मानता है कि कुर्सी की होड में राजनीति भ्रष्ट हो गई हैं। अवसरवादिता, स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार,आदि के प्रसार ने राष्ट्रीयता की उदात्त भावना और देश के उज्जवल भविष्य को तहस-नहस कर दिया हैं। कवि राष्ट्रीयता के उदात्त भावों का पक्षधर हैं। उसके हृदय में देश की सांस्कृतिक गरिमा के नव्य और भव्य रूप की एक निर्माणपरक कल्पना हैं। किन्तु रक्षकों के भक्षक हो जाने के कारण यह साकार नहीं हो पाती। इसलिए कवि ने भूखे देश की लोरी, आवाज न दो, क्या जवाब दोगे, कौन ले, कौन करे, जनयुग की गंगा, कुछ न कहो, कौन कहे आदि रचनाओं में राजनीतिक नेताओं की असंगत प्रवृतियों तथा मूल्यहीनता की स्थितियों पर समस्त व्यंग्यात्मक प्रहार किये है।

राजनेताओं की तरह कवि उन साहित्यकारों को भी फटकारता है, जो फैशन या सुविधा के लिए अपनी अनमोल साधना चंद टुकडों में बेच चुके है। वह मानता है कि आरोपित दर्द और नकली संवेदना का प्रकटीकरण युग धर्म को निभाने के लिए सही रास्ता नहीं हैं। इसी क्रम में गीतों में व्यक्त आत्मकथ्य दूसरों के लिए मार्गदर्शक सा है। वे रचना प्रक्रिया की वास्तविक स्थिति को प्रकट करते हुए कहते हैं कि-

हम निचोडते हैं आत्मा का लहू

तब कहीं जा के गजल होती है।

(आस्था के अमलतास-३५)

कवि की ये पंक्तियाँ हवाई लेखन में लगे रचनाकारों के प्रति अप्रत्यक्ष व्यंग्य भी हैं। इस प्रकार विराट ने राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक आदि समस्त क्षेत्रों में बिखरी मनुष्य की अन्तरात्मा को ध्वस्त करने वाली आधुनिक स्थितियों को बडे दर्द के साथ प्रस्तुत किया है। यह दर्द कहीं पीडा बनकर अभिव्यक्त हुआ है तो कहीं मूल्यों को निर्मित करने वाली छटपटाहट में बदलकर आक्रोश के रूप में बिखर पडा हैं।

आस्था के संदर्भ : वस्तुत: कवि का दृष्टिकोण इन तमाम विसंगत स्थितियों के प्रति विद्रोही रूप धारण किये हुए है। उसका धर्म उसे तम से सामना करने को प्रेरित करता है और इसलिए उसका अहं इन शब्दों में प्रस्फुटित होता है-

बीच नदी में डूब गये हम–तट पर ऐसा कहे न कोई,

हमें धार के पार उतरना इसलिए हो गया जरूरी।

(बूँद–बूँद पारा–१७)

सन्नाटे को तोडने के उपक्रम में, उपलब्ध परिवेश को परिवर्तित करने की सार्थक कोशिश करते हुए मनुष्यता की तलाश में निकलते हुए वह सबको आश्वस्त कररता है।–

रहो निश्चिन्त जब तक मैं खडा हूँ तिमिर के तट पर,

कहीं भी रोशनी को खुदकुशी करने नहीं दूँगा।

(किरण के कशीदे– ३५)

वस्तुत: युग के अभाव को भरने की साध उसकी चेतना को संघर्षजीवी बना देती है। इसलिए वह नई सुबह के सूरज का ध्यान करता हुआ मझधार स्वीकारने तथा तुफानों से लडने का साहस बांटता फिरता है–

शतरंज बिछाये हैं दुनिया, छल बल से मुहरें चलती हैं।

श्शह लाख लगाती है दुनिया, पर मन की मात नहीं होती।

(निर्वसना चांदनी –२६)

वह जीवन के युद्ध में हर असंगति को चुनौती देता हुआ सबको आश्वस्त करता है–

आखिर यह भी धुंघ छटेगी,धुआं उडेगा धूल हटेगी।

कुछ दिन धीरज रखो, होगा निर्मल वातावरण हमारा।।

(बूँद–बूँद पारा–६०)

वस्तुत: कवि की जीवन मूल्यों के प्रति अदम्य एवं अटूट आस्था है। इसी आस्था के सहारे वह बूंद–बूंद पारे को समेटेने की चेष्टा करता है। श्रद्धा को विश्वास से, कीर्ति को आचरण से, गृहस्थ को सन्यास से, अश्रु को हास से जोडने वाला उसका उपक्रम इसी चिन्तन का परिणाम हैं। वक्त के बदलने और कुहरे से सूर्य के निकलने की स्थिति पर उसे अमिट विश्वास हैं और इसलिए जीवन के चक्रव्यूह को भेदने का उपक्रम करते हुए गायक से तारों को कसने का आग्रह करता हैं। अपने इसी विश्वास के सहारे उसने अपने स्वाभिमानी व्यक्तित्व को जिलाये रखा, आँधियों में लौ स्थिर किये रहा, अभावों के धुएँ में

भी प्रयत्नों के दम को घुटने नहीं दिया और हर कटु यथार्थ सें साक्षात्कार कर मानव के भविष्य के प्रति आश्वस्त बना रहा। आस्था के ये संदर्भ विराट के गीतों की ऊर्जा के स्रोत हैं और कवि की उपलब्धि के वस्तुत: विराट आयामों को प्रस्तुत करते हैं।

विराट का काव्य शिल्प : विराट के गीतों में विषय वैविध्य जिस प्रकार उनकी काव्य कला के विविध आयामों का साक्षात्कार कराते हैं, शिल्प विधान की दृष्टि से भी उनकी व्यंजना उतनी ही उदात्त कोटि की हैं। विषय का चयन ओर उसका निर्वाह दोनों ही पक्ष विराट को श्रेष्ठ कवि सिद्ध करते हैं। उन्होने निरन्तर अपने गीतों का परिष्कार किया और इसी क्रम में गीतों का शिल्प विधान भी निरन्तर निखरता गया है। गेयता इन गीतों की प्राणधारा हैं। विराट का लगभग प्रत्येक गीत लयात्मकता का सम्यक निर्वाह करता हुआ दूसरों को गुनगुनाने के लिए बाध्य करता हैं। भाव के अनुरूप भाषा का रूप है इसलिए वह सपाट न होकर लाक्षणिकता से युक्त हो गई है। कवि की लाक्षणिक अभिव्यक्ति के अन्तर्गत नये बिम्बों की रचना, नवीनतम प्रतीकों की सफल प्रस्तुति और मिथ के विविध स्तरीय अनेक सार्थक प्रयोग उनकी समर्थ काव्य व्यंजना शक्ति के द्योतक है। इन सब के बिना आधुनिकता को व्यक्त करना संभव ही नहीं था। छंद विधान के अन्तर्गत भी कवि ने अनेक नये तथा निर्दोष प्रयोग किये हैं, जो वस्तुत: नयेपन का एहसास कराते हैं। श्री रामावतार त्यागी के शब्दों में विराट को छन्द का पूर्ण ज्ञान है और कविता के रंग का पता है। यद्यपि कही कही अटपटे भाषा प्रयोग, शब्द चयन की प्रयासपूर्ण पद्धति चिन्तनीय है। तथापि वह इतनी स्वल्प मात्रा में हैं कि उसके कारण मूल्यांकन में कोई विशेष बाधा उपस्थित नहीं होती।

४.३ समग्र मूल्याकंन :

वस्तुत: विराट का काव्यत्व उनके कवि व्यक्तित्व के प्रौढ स्वरूप को प्रदर्शित करता हुआ विकास के नये आयामों को प्रोद्‌भासित करता है। उन्होने एक ओर परम्परा को सम्मान दिया है तो दूसरी ओर आधुनिक जीवन की जटिल संवेदनाओं को सहजता से प्रस्तुत कर नव्य चेतना को अनुकूल समर्थ अभिव्यक्ति प्रदान की है। उनके गीत अनुभूत जीवन की अभिव्यक्ति के गीत है और मन की सहज प्रक्रिया से जन्मे है। अत: उनमें गीतिकाव्य की समस्त विशेषताएँ नवीन भाव बोध और नवीन अभिव्यक्ति शैली के परिप्रेक्ष्य में उपलब्ध होती है। अस्तु, रस सिद्ध, सुप्रतिष्ठित, बहुचर्चित,दर्द के गायक और एक सामर्थ्यवान आस्थावान कवि के रूप में भी विराट आधुनिक हिन्दी गीति परम्परा में अपना महत्तवपूर्ण स्थान रखते है। इसलिए श्री दिनेश सौनवलकर का यह कथन सत्य प्रतीत होता है कि ऐसे गीतकार का सृजन निश्चय ही पिछले दशक की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

रूप है, प्यार है, दर्द है इसलिए

काव्य में श्शेष रसधार है आज भी।

विराट की नई कविता – पुस्तक आस्था के अमलतास से ली गई ये पंक्तियाँ विराट की काव्य सामग्री का खुलासा करती लगती है। रूप, प्यार और दर्द और इनसे उत्पन्न वह रस जो काव्य को काव्य बनाये हुए है।

जाहिर है कि वर्तमान के काव्य संसार में कार्य कर रहे किसी कवि के पास इन तत्वों का होना उसके पिछडेपन और वर्तमान परिवेश से कटाव का संकेत है। रूप, प्यार, दर्द और रस को वर्तमान विचारक पुराने जमाने की बाँतें मानता है। लेकिन यह सच नहीं है क्योंकि रूप, प्यार, दर्द और रस के बिना आज भी जीवन निस्सार है। फिर इन तत्वों से निर्मित विराट की कविता वर्तमान से कटी हुई कैसे हो सकती है? निसन्देह विराट की कविता आज के आम आदमी की जिन्दगी की कविता है। विराट की कविता बिना किसी बनाव श्रृगाार के सादी जिन्दगी से उपज कर सीधे जिन्दगी में उतरती है। गीत हो या गजल विराट ने बिना किसी नक्काशी के समकालीन जिन्दगी के कहें और मुलायम चेहरे को अपनी रचनाओं में जिस विविधता के साथ अंकित किया है, वह किसी भी सहृदय के लिए सहज सुलभ है।

एक समय था जब गीत अपने दिक्कत काल में था और रूमानी संभावनाओं तथा संवेदनाओं में फँसा था तब जिन गीतकारों ने गीत की गिरती प्रतिष्ठा को सहारा दिया, उनमें विराट भी एक थे। उन्होने गीतों को नया श्शब्द, संबोधन एवं भाषा देकर गीतों के स्वर को बदला, जिससे बदली हुई मानसिकता में गीतों की सामाजिक भूमि वैचारिक बन गई और विराट गीतों के नये सामाजिक परिवेश में नयी पोशाकों के साथ महत्वपूर्ण रचना चरित्र और व्यक्तित्व के साथ उपस्थित हुए। विराट गीत की मूल आत्मा से अलग नहीं हो सके। आयातित संस्कृति को हवा देने वाले लोगों के प्रति विराट की वैचारिक सोच के ठोस उदाहरण –

मांगी हुई तूलिका के

फैशनग्रस्त चितेरे हम

चौंकाने वाले उलझी आकृतियों के

भीतर की नागफनी, पृष्ठ–२१

गीतकार विराट की सबसे बडी विशेषता यह है कि वह समझौतावादी नहीं है। जुझारू प्रवृति उसके

रोम-रोम में समायी हुई है। इसलिए वह पूंजी दु:ख के विरूद्ध तेज आवाज भी लगाता है और छोटे तबके के लोगों के समाज में बैठ कर उनकी कथा-व्यथा भी सुनता है-

एक तो यह बिवाई फटी सो धरा

दूसरे गुप्त गोदाम ताले पडे

एक कृत्रिम कभी थोपदी शीश पर

लोग घर से निकल पंक्तियों में खडे।

यह कहना गलत है कि विराट केवल रूमानी संभावनाओं के कवि हैं। इधर पिछले एक दशक से विराट के गीतों का सवर बदला हैं। उनके दिल में छोटे तबके के लोगों के प्रति गहन आस्था और सहानुभूति है। विराट के गले में आम आदमी का दर्द हैं। उनके दर्द को विराट ने धुनों-स्वर- तानों के साथ गीत में उतारा है। फलत: उनके गीतों में सहजता और स्वाभाविकता है।

विराट वक्त के साथ चलने का आदी नही है, बल्कि वक्त उनके बताए रास्ते पर चलता है। विराट के गीतों में सहजता और संप्रेषणता की व्यापकता हैं। इनका शिल्प साफ-सुथरा और तराशा हुआ है, इसलिए उनमें सहज आर्कषण है। उनके गीत मोहभंग की स्थिति पैदा करते है। गीतों के गगन में चन्द्रसेन विराट ध्रुव तारे की तरह हैं, जिससे हर नया रचनाकार वक्त की सही दिशा और दशा पहचानता है। वे गीतों को मनुष्य की देह में बहुत संवेदनिक अहसास के साथ पहुँचाते हैं और उनके भीतर की सच्चाई को उकेर कर बाहर लाते हैं। इसलिए विराट के गीतों की आतंरिक दुनिया और बाह्य संसार के बीच आत्मिक सह-सम्बन्ध है। विराट के गीतों का रचनात्मक चरित्र भारी भरकम और प्रभावी है। ये जी हजूरी की भाषा में रंगे और ढले नहीं है, बल्कि इनमें खुरदुरापन और धारदार यथार्थ हैं जो गद्दार भाषा और व्यवस्था की पीठ पर छुरा भोंकता है और मानवीय मूल्यों की कद्र करते हुए उसका पुर्नमूल्याकंन कराता है। ये दूसरों की लीक से अलग पहचान लिये है। उनके गीतों और छन्दों द्वारा भीड़ से अलग सरलता से पहचाना जा सकता है। विराट का रचनात्मक चेहरा कौनसा है?

❑ ❑ ❑

• अध्याय – ५ •
श्री चन्द्रसेन विराट के गीतों का कला पक्षः विवेचन

५.१ विराट का काव्य–समीक्षात्मक विवेचन :

प्रकृति से एक आदिम लगाव अनुभव कराने वाले उनके गीतों में आधुनिक समय का तनाव परिलक्षित होता है। प्रतिक्रियाओं के तीखे संवेदनात्मक एहसास के साथ जो सादृश्य बिम्ब सामने आता है, वह व्यंग्य को तीखा और सघन बनाता हैं। यथार्थ की तीखी समझ और चेतना का होना जरूरी हैं। वे अपनी सामाजिकता प्रकृति में और मानवीय सम्बन्धों में खोजना चाहते है, वहाँ उन पर यह दायित्व भी है कि अपनी भाषा को व्यापक सम्प्रेषणीयता का जनतांत्रिक आधार देते हुए उसे जरूरी रूपतामक संगठन दे सके । जीवन नैरन्तर्य के समर्थक है। वे सक्रिय सचेष्ट जीवन के गीत गाते है। सहजता, अर्थमय सरलता से युक्त वे कठिन परिस्थितियों में जन्म लेती कविता के मर्म से परिचित है। गीत कला के साथ–साथ सामाजिक विमर्श भी है।

रूप है, प्यार है, दर्द है इसलिए
काव्य में शेष रसधार है आज भी।

विराट के गजल संग्रह आस्था के अमलतास से ली गई ये पंक्तियाँ विराट की काव्य सामग्री का खुलासा करती लगती है। रूप, प्यार और दर्द और इनसे उत्पन्न वह रस जो काव्य को काव्य बनाये हुए है। जाहिर है कि वर्तमान के काव्य संसार में कार्य कर रहे किसी कवि के पास इन तत्वों का होना उसके पिछडेपन और वर्तमान परिवेश से कटाव का संकेत है। रूप, प्यार, दर्द और रस को वर्तमान विचारक पुराने जमाने की बाँतें मानता है। लेकिन यह सच नहीं है क्योंकि रूप, प्यार, दर्द और रस के बिना आज भी जीवन निस्सार है। फिर इन तत्वों से निर्मित विराट की कविता वर्तमान से कटी हुई कैसे हो सकती है? निसन्देह विराट की कविता आज के आम आदमी की जिन्दगी की कविता है। विराट की कविता बिना किसी बनाव श्रृगाार के सादी जिन्दगी से उपज कर सीधे जिन्दगी में उतरती है। गीत हो या गजल विराट ने बिना किसी नक्काशी के समकालीन जिन्दगी के कहें और मुलायम चेहरे को अपनी रचनाओं में जिस विविधता के साथ अंकित किया है, वह किसी भी सहृदय के लिए सहज सुलभ है।

किसी भी साहित्यकार की विस्तृत काव्य साधना और उनके योगदान पर जब भी विचार किया जाता है तो उनके कृतित्व के कलापक्ष का उचित विवेचन और विश्लेषण किया जाना आवश्यक हैं। उनका स्पष्ट विचार है कि ''जीवन की आपाधापी में जीवन कहीं खो गया, ज्ञान की तलाश में मन गायब होता गया अथवा अधिक कहने के मोह में हम कथ्यहीन होते चले गये। ऐसी स्थिति से उन्हें कोई खतरा नहीं है। जो जिन्दगी को एक परम्परागत शैली के साथ जीते हैं, खतरा उनके लिए हैं जो शब्दों और विचारों के संसार में अपनी पहचान बनाना चाहते हैं। इस दृष्टि से देखता हूँ तो आज की अधिकांश कविताओं से मुझे निराशा होती है। विचार करने पर ये स्थिति सिर्फ दयनीय ही प्रतीत होती है। रचनाकार अपनी मूल प्रकृति में दैन्य के प्रति विद्रोही होता है, उसके विद्रोह अथवा उसके क्षोभ को अनन्तोगत्वा केवल उसकी रचनाएँ ही संभालती हैं। यह प्रक्रिया जितनी गहन होती है, उतनी ही सहज बनती है कविता।''

(लडाई लम्बी है की भूमिका से)

एक समय था जब गीत अपने दिक्कत काल में था और रूमानी संभावनाओं तथा संवेदनाओं में फँसा था तब जिन गीतकारों ने गीत की गिरती प्रतिष्ठा को सहारा दिया, उनमें विराट भी एक थे। उन्होने गीतों को नया शब्द, संबोधन एवं भाषा देकर गीतों के स्वर को बदला, जिससे बदली हुई मानसिकता में गीतों की सामाजिक भूमि वैचारिक बन गई और विराट गीतों के नये सामाजिक परिवेश में नयी पोशाकों के साथ महत्वपूर्ण रचना चरित्र और व्यक्तित्व के साथ उपस्थित हुए। विराट गीत की मूल आत्मा से अलग नहीं हो सके। आयातित संस्कृति को हवा देने वाले लोगों के प्रति विराट की वैचारिक सोच के ठोस उदाहरण–

मांगी हुई तूलिका के
फैशनग्रस्त चितेरे हम
चौंकाने वाले उलझी आकृतियों के

भीतर की नागफनी, पृष्ठ–२१

गीतकार विराट की सबसे बडी विशेषता यह है कि वह समझौतावादी नहीं है। जुझारू प्रवृति उसके रोम–रोम में समायी हुई है। इसलिए वह पूंजी दुःख के विरूद्ध तेज आवाज भी लगाता है और छोटे तबके के लोगों के समाज में बैठ कर उनकी कथा–व्यथा भी सुनता है–

एक तो यह बिवाई फटी सो धरा
दूसरे गुप्त गोदाम ताले पडे

एक कृत्रिम कभी थोपदी श्शीश पर

लोग घर से निकल पंक्तियों में खडे।

यह कहना गलत है कि श्री विराट केवल रूमानी संभावनाओं के कवि हैं। इधर पिछले एक दशक से विराट के गीतों का सवर बदला हैं। उनके दिल में छोटे तबके के लोगों के प्रति गहन आस्था और सहानुभूति है। विराट के गले में आम आदमी का दर्द हैं। उनके दर्द को श्री विराट ने धुनों-स्वर- तानों के साथ गीत में उतारा है। फलत: उनके गीतों में सहजता और स्वाभाविकता है।

श्री विराट वक्त के साथ चलने का आदी नही है, बल्कि वक्त उनके बताए रास्ते पर चलता है। विराट के गीतों में सहजता और संप्रेषणता की व्यापकता हैं। इनका शिल्प साफ-सुथरा और तराशा हुआ है, इसलिए उनमें सहज आर्कषण है। उनके गीत मोहभंग की स्थिति पैदा करते है। गीतों के गगन में श्री चन्द्रसेन विराट ध्रुव तारे की तरह हैं, जिससे हर नया रचनाकार वक्त की सही दिशा और दशा पहचानता है। वे गीतों को मनुष्य की देह में बहुत संवेदनिक अहसास के साथ पहुँचाते हैं और उनके भीतर की सच्चाई को उकेर कर बाहर लाते हैं। इसलिए श्री विराट के गीतों की आतंरिक दुनिया और बाह्य संसार के बीच आत्मिक सह-सम्बन्ध है। श्री विराट के गीतों का रचनात्मक चरित्र भारी भरकम और प्रभावी है। ये जी हजूरी की भाषा में रंगे और ढले नहीं है, बल्कि इनमें खुरदुरापन और धारदार यथार्थ हैं जो गद्दार भाषा और व्यवस्था की पीठ पर छुरा भोंकता है और मानवीय मूल्यों की कद्र करते हुए उसका पुर्नमूल्याकंन कराता है। ये दूसरों की लीक से अलग पहचान लिये है। गीतों और छन्दो से अलग पहचाना जा सकता है कि विराट का रचनात्मक चेहरा कौनसा है?

५.२ विराट का काव्य शिल्प :

विराट के गीतों में विषय वैविध्य जिस प्रकार उनकी काव्य कला के विविध आयामों का साक्षात्कार कराते हैं, शिल्प विधान की दृष्टि से भी उनकी व्यंजना उतनी ही उदात्त कोटि की हैं। विषय का चयन ओर उसका निर्वाह दोनों ही पक्ष विराट को श्रेष्ठ कवि सिद्ध करते हैं। उन्होने निरन्तर अपने गीतों का परिष्कार किया और इसी क्रम में गीतों का शिल्प विधान भी निरन्तर निखरता गया है। गेयता इन गीतों की प्राणधारा हैं। विराट का लगभग प्रत्येक गीत लयात्मकता का सम्यक निर्वाह करता हुआ दूसरों को गुनगुनाने के लिए बाध्य करता हैं। भाव के अनुरूप भाषा का रूप है इसलिए वह सपाट न होकर लाक्षणिकता से युक्त हो गई है। कवि की लाक्षणिक अभिव्यक्ति के अन्तर्गत नये बिम्बों की रचना, नवीनतम प्रतीकों की सफल प्रस्तुति, और मिथ के विविध स्तरीय अनेक सार्थक प्रयोग उनकी समर्थ काव्य

व्यंजना शक्ति के द्योतक है। इन सब के बिना आधुनिकता को व्यक्त करना संभव ही नहीं था। छंद विधान के अन्तर्गत भी कवि ने अनेक नये तथा निर्दोष प्रयोग किये हैं, जो वस्तुत: नयेपन का एहसास कराते हैं। श्री रामावतार त्यागी के शब्दों में '' विराट को छन्द का पूर्ण ज्ञान है और कविता के रंग का पता है। यद्यपि कही कही अटपटे भाषा प्रयोग, शब्द चयन की प्रयासपूर्ण पद्धति चिन्त्य है। तथापि वह इतनी स्वल्प मात्रा में हैं कि उसके कारण मूल्यांकन में कोई विशेष बाधा उपस्थित नहीं होती।

विराट जी के गीतों में समय के प्रति जो चिन्ता और चेतना है, उसके पीछे उनके सधे हुए शिल्प की महत्वपूर्ण भूमिका कही जा सकती है। गीतों की रचना मात्रिक शब्दों के अनुशासन में लिखना कठिन काम होता है, किन्तु विवेच्य गीतकार को भाषा, छन्द इतने सधे गये हैं, कि वह जो लिखते हैं, वह गणना की कसौटी पर खरे उतरते हैं।

गीत हो कि नवगीत या फिर मुक्तिका, गीतकार बहुत सावधानी से श्शब्दों का चयन करते हैं। यद्यपि यह बेहद कठिन कार्य हैं, किन्तु वह इसे सरलता से कर लेते हैं। गीत के प्रति उनकी यह आस्था हैं। उनका स्पष्ट और दृढ विचार है कि–**''छन्दबद्ध ही लिखा प्रारंभ से। आज भी उसी का निर्वाह कर रहा हूँ।''**

मानवीय सुख–दु:ख, मिलन, विरह, हर्ष, विषाद एवं अन्य अनुभूतियों को गीत पूरी सक्षमता के साथ अभिव्यंजित कर सकता है, गीत मानव के रागात्मक आवेगों को व्यक्त कर सकता है। उनका स्पष्ट विचार है कि गीत समय सापेक्ष तो है ही, कालातीत भी है क्योंकि उसमें मानवीय मन के समस्त रागात्मक संवेगों के अनुगाायन की गूँज हैं। औद्योगिकता और तकनीक के वातावरण में जीते हुए भी मनुष्य का आदिम मन आज भी रागात्मक है और इसलिए गीत उसके समस्त मनोभावों को सही संदर्भो में व्यक्त करने में सक्षम रहा है।

(लडाई लम्बी है की भूमिका से)

विराट जी के गीतों में शिल्प विधान का निर्वाह ईमानदारी और निष्ठा के साथ किया गया है। समय–समय पर समाज में आए परिवर्तनों का प्रभाव गीतकारों की भाषा और उनके भाव पक्ष पर पडता रहा है और यही प्रयोगधर्मिता यहाँ दिखाई देती है।

आधुनिक हिन्दी काव्य और विशेषकर गीत विधा में कथ्य और शिल्प को लेकर प्रयोग किये जाते रहे हैं। विराट जी ने काव्य परम्परा का निर्वाह करते हुए आधुनिकता का समन्वय करते हुए ही गीत लिखे हैं।

५.३ श्री विराट की रचनाओं का कलापक्ष–मूल्यांकन :

विराट ने जीवनगत वास्तविकताओं को उद्घाटित करने के लिए विविध बिम्बों का सृजनात्मक उपयोग किया है। इनके काव्य बिम्ब उनके कथ्य के अनुरूप नवीन अनुभूति प्रदान करते हैं। विराट की रचनात्मक क्षमता हिन्दी गजल में अद्वितीय है। उन्होंने कथ्य और शिल्प दोनों स्तरों पर न केवल प्रयोग किये हैं वरन् आने वाली पीढी के लिए भी मार्ग प्रशस्त किया। उनके गीत परम्परागत होते हुए भी नवीनता से ओतप्रोत है।

(क) मिथक प्रयोग : इनके प्रतीकात्मक तथा मिथकीय प्रयोगों का काव्य विधा में विशिष्ट महत्व है।

(ख) प्रतीक प्रयोग : इन्होंने परम्परागत प्रतीकों के अतिरिक्त नवीन प्रतीकों का प्रयोग भी किया है। रचना में अमूर्त रहस्यों एवं अव्यक्त जटिल भावों को मूर्त एवं सुपरिचित वस्तुओं के माध्यम से प्रस्तुत किये जाने की संज्ञा प्रतीक विधान है। डॉ. भगीरथ मिश्र के अनुसार – ''**अपने रूप, गुण, कार्य या विशेषताओं के सादृश्य एवं प्रत्यक्ष के कारण जब कोई वस्तु या कार्य किसी अप्रस्तुत वस्तु, भाव, विचार, क्रियाकलाप, देश, जाति, संस्कृति आदि का प्रतिनिधित्व करता हुआ प्रकट किया जाता है, तब वह प्रतीक कहलाता है।**'' वास्तव में रचनाकार प्रतीकों का प्रयोग भावों–विचारों के उत्तेजन और अभीष्ट अर्थ के सम्यक द्योतन के लिए करते है। श्री विराट ने भी वर्ण्य विषय की गहनता और मार्मिकता के लिए प्रतीकों का प्रयोग किया हैं उन्होंनें प्रतीकों का चयन याहित्य, इतिहास, पुरण, संस्कृति, प्रकृति, विज्ञान आदि अनेक स्रोंतो से किया हैं।

(ग) बिम्ब विधान : किसी भी रचना में शब्दों के माध्यम से अमूर्त को मूर्त करना और अप्रस्तुत को प्रभावपूर्ण ढंग सं प्रस्तुत कर देना बिम्ब विधान कहलाता हैं। यह प्रस्तुतिकरण तीन स्तरों पर होता है– दृश्य स्तर पर, मानस स्तर पर, संवेदनागत धरातल पर। इस कारण बिम्ब विधान भी तीन प्रकार का होता है– चाक्षुष बिम्ब या दृश्य बिम्ब, मानस बिम्ब एवं संवेद्यबिम्ब समीक्ष्यकाव्य में तीनों प्रकार के बिम्बों की सफल योजना मिलती है। चाक्षुष या दृश्य बिम्ब के अर्न्तगत रचनाकार श्शब्द चित्र उपस्थित करता है। वह श्शब्दों को चुन–चुनकर इस प्रकार संयोजित करता है कि पाठक या श्रोता के मानस पटल पर वर्ण्य विषय का समग्र चित्र अंकित हो जाता है। जिस प्रकार कलाकार रंगों और रेखाओं से दृश्य को उभार कर इतना प्रभावोत्पादक बना देता है कि दृष्टा सब कुछ विस्मृत कर दृश्य में खो जाता है उसी प्रकार रचनाकार दृश्य– बिम्ब की सफलता होती है। दृश्य– बिम्ब दो प्रकार के होते है– स्थिर बिम्ब एवं गतिशील बिम्ब।

समीक्ष्यकाव्य में दोनों प्रकार के बिम्ब मिलतें है। स्थिर बिम्बों में कवि ने पूर्ण परिदृश्य एक साथ साकार कर दिया है।

दृश्य-बिम्ब से अधिक उन्हें मानस बिम्बों के अंकन में सफलता मिली है। मानस बिम्ब दो प्रकार के होते हैं- भाव प्रधान और विचार प्रधान। समीक्ष्य काव्य में जहाँ कवि का मन प्रणयभावों की मधुर रागिनी से निनादित है अथवा प्रकृति के मनोरम सौन्दर्य से समन्वित है अथवा जनसामान्य की करूणा जनित दुर्दशा पर उद्वेलित है। वहाँ भाव प्रधान बिम्बों की सृष्टि हुई है, तथा जहाँ कवि ने समसामयिक समस्याओं के युक्तियुक्त व्यवहारिक समाधान सुझाये हैं वहाँ विचार प्रधान मानस बिम्ब सफलतापूर्वक उभरे हैं। देशभक्ति के भावावेग में श्री विराट ने प्रभावपूर्ण भावप्रधान मानस बिम्ब रचे है।

एजरा पाउण्ड का कथन है कि '' बिम्ब व्यक्ति चेतना के धरातल पर एक प्रकार का जीवित कालबोध है।'' कवि की बिम्ब सम्पृक्ति ने इस जीवित कालबोध को हमारी अनुभूति का विषय बनाया है। बिम्ब वास्तविकता के विभिन्न स्तरों तक पहुँचने का नितान्त व्यक्तिगत और आत्मपरक मार्ग है। बिम्ब वस्तु या कल्पना का हुबहु चित्र प्रस्तुत करता है। इन बिम्बों के द्वारा किये गये पुर्ननिर्माण का अनुभव पाठक की किसी ना किसी संवदना के स्तर पर करने में सक्षम है। वह वस्तु की अनुकृति नहीं, उसके समानान्तर एक नयी और अभूतपूर्व कृति है। बिम्बधर्मी विशेषणों के कारण भी इन बिम्बों का सघन प्रभाव पाठक मन पर होता हैं। उनके काव्य में बिम्ब मात्र शैली की दृष्टि से ही मौलिक है ऐसा नहीं, बल्कि उनकी वस्तु जगत के प्रति देखने की, प्रतिक्रिया देने की विशिष्ट भावात्मक तथा वैचारिक दृष्टि के कारण भी ये बिम्ब मौलिक बन सकते है। उनके काव्य में बिम्ब एक शब्द में, कभी कुछ पंक्तियों में, कभी श्रृखलाबद्ध रूप में, कभी वर्णन विश्लेषण के उपरान्त, कवि द्वारा प्रस्तुत की गयी टिप्पणीनुमा प्रतिक्रिया में, कभी विशेषणों के प्रयोग में साकार हुए है। कवि द्वारा वर्णित स्थितियाँ उनके बिम्ब विधान में परिलक्षित हुई है। उनके गीतों में बिम्ब की यह प्रतीकात्मकता उत्कर्ष पर पहुँची दृष्टिगोचर होती है। कला निर्मित से लेकर रोजमर्रा के चरमराते जीवनानुभवों तक का व्यापक कैनवास बिम्बों के माध्यम से पाठकों के संवेदन विश्व तक समप्रेषित करना किसी सक्षम कवि का ही कवि कर्म हो सकता है।

(घ) भाषा प्रयोग : श्री विराट की भाषा संवेदना अत्यन्त सघन एवं गंभीर है। उन्हें शब्दों के मर्म की पहचान है और इसलिए वे विषयानुकूल सटीक एवं सार्थक शब्द प्रयोग कर सके हैं। शब्दचयन में उन्होंनें उदारता का परिचय दिया हैं तथा शुद्व तत्सम श्शब्द प्रधान संस्कृत निष्ठ परिष्कृत हिन्दी के प्रति आग्रहवान होते हुए भी विदेशी एवं तद्भव-देशज शब्द स्रोतों से पर्याप्त शब्द चुने हैं। मुहावरों और

लोकोक्तियों के प्रयोग से उनकी भाषा मर्मस्पर्शी बन गयी हैं उन्होंनें प्राय: ऐसे मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया है जो बहुप्रचलित होने के कारण सुबोध और सहज ग्राह्य है। समीक्ष्य काव्य में लक्षणा और व्यंजना का वर्चस्व है, जहाँ अभिधात्मक प्रयोग हैं वहाँ भी लक्षणा और व्यंजना का संस्पर्श सहज ही अनुभव होता है।

काव्य का समष्टिगत अभिव्यंजना का आधार भाषा ही हैं काव्य में भाषा वैचारिक आदान- प्रदान के लिए यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों को माना गया है। और यही भाषा का कार्य है। कवि की रचनाप्रक्रिया इसी से होकर गुजरती है। इतना ही नहीं कवि का रचनात्मक ताप भी भाषा में ही पिघलता है। गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है कि - **''गिरा अरथजल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।''** यहाँ शब्द - अर्थ जल और लहर के समान है जिसमें ऊपरी अन्तर तो है पर भीतरी तौर से दोनों समान है। काव्य भाषा कलात्मक भाषा होती है जो हमें कविता को पढने मात्र से प्रभावित करती है, अर्थ उसके गाम्भीर्य को प्रकट करता है। किसी भी रचना की भाषिक प्रासंगिकता या समकालीनता इस बात पर निर्भर करती है कि रचनाकार ने अर्थ की कितनी परतों एवं आयामों को उद्घाटित करने के लिए श्शब्दों का सर्जनात्मक प्रयोग किया है। यदि रचना पाठक को आकर्षित करने, भावना को आर्द्र बनाने में सक्षम ना हो, या उसके विचारो के उद्वेलन में अक्षम हो तो भाषा की सामर्थ्य का प्रश्न उठ खडा होता है, अभिव्यक्ति सदोष हो जाती है। अत: रचना प्रक्रिया में भाषा और भाव दोनों की सिद्दि होनी चाहिए। भाव सिद्धि और शब्द सिद्धि के बिना कारक सिद्धि नहीं हो सकती। वास्तव में अर्थ अन्त: प्रक्रिया में चलता है, पर शब्द ही सौन्दर्य प्रक्रिया को ग्रहण करता है।

रचनाकार अपने वातावरण में संवेदित होता है और उसकी अभिव्यक्ति के लिए सर्जनात्मक तनाव की स्थिति में गुजरता है- अनुसंग रूप में भाषा होती है, जो भाव एवं परिस्थिति अनुसार बदलती रहती है। रामविलास शर्मा के शब्दों में 'शब्दचयन' और रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में 'शब्द संशोधन' की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी के विचार द्रष्टव्य है-'' भाषा का आधार वह रूप है, जो रचनाकार समाज से स्वीकार करता हैं और इसी के अनुकूल उसकी संवेदना निखरती है, जिसे वह फिर अपनी काव्य भाषा में व्यक्त कर लेता है ....'' यह काव्य भाषा निश्चित सीमा तक कवि के व्यक्तित्व के अनुकूल रूपाकार ग्रहण करती है, पर अपनी आधारभूत सामाजिक भाषा से वह पृथक नहीं हो सकती, जो कि रचनाकार की संवेदना का माध्यम और स्रोत है। इसलिए भाषा के अर्थ-बोध के साथ साहित्य में

संवेदनात्मक गहराई बढती जाती है। प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक एडवर्ड पीर कहते है कि –'' भाषा ही एक ऐसा साधन है जो प्रत्येक युग के परिवर्तन को, प्रगति, नवीनता सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों एवं अनेक विघटन को दिखाने में समर्थ होता हैं। यह भाषा स्वयं ही सम्पूर्ण सर्जनात्मक प्रणाली है.......... वह रूपात्मक पूर्णता के लिए हमारे अनुभवों को परिभाषित करती है।

श्री विराट की भाषा में बिम्ब, अलंकार या प्रतीक सहज ही व्यक्त हुए है, सप्रयास नहीं। यहाँ भाषा का उपादान तो है, पर कृत्रिम सजावट नहीं। उनकी भाषा में भाव–बोध की गहनता एवं कवि की सघन संवेदन क्षमता को अनुभूत किया जा सकता है। उनकी भाषा आम जिन्दगी को लक्षित नहीं वरन् पूरी व्यजंकता के साथ आक्रोश को व्यक्त करती है। इन्ही आक्रोशों के द्वारा बाद में संवेदनापूर्ण काव्य– भाषा का जन्म होता है। इसलिए उनकी भाषा जीवन के अनुभवों , लोक संवेदना और मानवीय रागात्मकता की भाषा है।

शब्दों का सीधा सम्बन्ध कथ्य से जुडे आवेगो–संवेगों के साथ भोगे हुए सच के साथ होता है। इसलिए अवांछित कृत्यों का विरोध उसी आवेश के साथ हुआ है जिस तीव्रता से शब्द भीतर से आए है। यहाँ किसी कृत्रिम अलगााव की स्थिति नहीं हैं जबकि कवि में परिवेश से अलगााव है, एक त्रासदी के रूप में।

अनुभव की प्रामाणिकता, सच्चाई और खरेपन की चिन्ता उनकी भाषा में दिखाई देती है। भाषा के स्तर को बनाये रखने के प्रयास मे गीत रचनात्मक तनाव से गुजरता है। श्री विराट जी का काव्य संसार श्शब्दों से विचारों तक उनके रचनात्मक कर्म और प्रयोजन को परिभाषित करता है और उनके अनुभव मूलों की थाह भी लेता है। श्शब्दों से खेलना और आवश्यकतानुसार उन्हें नये अर्थो में खपा लेना उनकी विशेषता है। श्री विराट के लिए गीत एक लम्बी प्रक्रिया है, चीजों को वस्तुपरक और जटिल तथा दूरगाामी सम्भावनाओं को जाँचने की एक सम्यक विधि है– वह किसी तात्कालिक उद्वेग की स्वत: स्फूर्त अनायास अभिव्यक्ति नहीं है। यह केवल मनोरंजन और रोमांटिक स्तर पर नहीं है और न हीं केवल बौद्धिक चिन्ता और संघर्ष का परिणाम है। वास्तव में उनके गीत समकालीन वास्तविक स्थिति का कठोर साक्षात्कार है, परिणामत: वे रचना प्रक्रिया की जटिलता और उसके पीछे कार्यरत रचनात्मक संघर्ष को प्रमाणित करता है। अनुभव की अद्वितीयता और श्शब्दों की गरिमा के बहुप्रचारित दावों के समानान्तर श्री विराट ने व्यवहारवादी रुझान से कविकर्म की नयी सम्भावनाओं को जोडकर देखा और दैनिक जीवन में श्शरीक साधारण चीजों को अचानक गीत की भाषा में उपलब्ध करवाकर एक नये काव्यात्मक सम्बन्ध का साक्ष्य

रचने की कोशिश की है। श्री विराट जी जिन्दगी के बारे में एक गहरी समझ रखते है। वे शिक्षित संवेदना के कवि है। बुनियादी तौर पर रूमानी स्वभाव प्रकृति के जो सुन्दर चित्र आलोकित करता है, वे सूक्ष्म स्तर पर अपना मानवीय अर्थ प्रकट किये बिना रह नहीं पाते। प्रकृति का रागात्मक साहचर्य गीतकार को उडने के लिए प्रेरित करता है।

इस गीतकार के गीतों ने न केवल भाषा की शक्ति को नया बनाया, अपितु स्थिति का विश्लेषण भी किया। उनके गीतों में शब्द बुलेट का कार्य करते है। श्री विराट के यहाँ समाज की असामान्य गतिविधि को पकडने की कोशिश शान्त और आत्मचेतस् है।

गीत के शब्द हमें आमंत्रित करते है, केवल आनन्दित होने के लिए नहीं– सोचने और निर्णय लेने के लिए नहीं– बल्कि भीतर तक महसूस करने के लिए– एक जटिल अनुभव को उपलब्ध करने के लिए जो शब्दों में प्रत्यक्ष है। व्यवस्था के दबाव से श्री विराट जी की छटपटाहट और विकलता का सीधा समबन्ध है।

श्री विराट की काव्यभाषा भावानुकूल है। उसमें भावों एवं विचारों की सरलता एवं गंभीरता के अनुरूप भाषिक रूप निश्चित किया गया है। इसलिए उसमें गम्भीर अर्थवेत्ता सर्वत्र सुलभ है। अपनी अर्थ गाम्भीर्य के कारण यह भाषा रचनाकार की अभिव्यंजनात्मक क्षमताओं को भी समृद्ध बनाती है। भाषा को समृद्ध बनाने के लिए शब्द चयन में कवि ने सावधानी बरती है। सामान्यतया उनकी रूचि तत्सम शब्दों के प्रयोग में है और वे खडी बोली के सहज, सरल किन्तु संस्कृतनिष्ठ स्वरूप को प्रयोग करने में रूचि रखते है। तथापि जहाँ उन्हें अर्थगौरव की दृष्टि से संस्कृत शब्द स्रोतों से प्राप्त तत्सम शब्दों द्वारा अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति नहीं होती, वहाँ वे अरबी, फारसी, अंग्रेजी या अन्य भाषाओं के शब्दों को जो हिन्दी में प्रचलित है नि:संकोच ग्रहण करते हैं।

तत्सम शब्द : श्री विराट के शब्द भण्डार में तत्सम शब्दों का बाहुल्य है। वे हिन्दी के तो समर्थ कवि हैं, मराठी मूल होने के कारण मराठी और उसमें व्याप्त संस्कृत प्रभाव के कारण संस्कृत प्रयोग से भी सुपरिचित हैं। उन्हें शब्दों के मर्म की पहचान है और प्रसंग की आवश्यकतानुसार उपयुक्त शब्द चुनने में वे सफल रहते है। उनके काव्य में निरन्तर प्रयोग होने वाले कुछ तत्सम शब्द इस प्रकार है– कोलाहल, एंकाकी, अम्बर, अन्तर आदि।

संस्कृत शब्द : हिन्दी भाषा– विभाषा शब्द समूहों में श्री विराट ने संस्कृत शब्दों को प्रधानता दी है। अनेक शब्द जो हिन्दी में अप्रचलित हैं उन्हें कवि ने प्रयोग किया है। उन्होंनें संस्कृत प्रत्ययों के

आधार पर हिन्दी शब्दों को ढालते हुए उन्हें नए अर्थ प्रदान किए है। जैसे:- मसृण, हस्त, त्रियक, पगार, सम्पृक्त, स्यात् आदि।

तद्भव श्शब्द : यद्यपि श्री विराट के मूलवृत्ति तत्सम प्रधान है किन्तु फिर भी उनकी काव्य साधना में तद्भव शब्दों का भी प्रचुर योगदान है। उन्होंनें तद्भव शब्दों को तत्सम एवं अर्द्धतत्सम श्शब्दों की संगति में इस प्रकार प्रयोग किया है कि वे अलग ही अपना सौन्दर्य व्यक्त करते है। उदाहरणत: मरूस्थल, प्यास, पत्थर, वनवास, हलदी, सूरज, दूध आदि।

देशज शब्द : यहाँ यह उल्लेखनीय है कि समीक्ष्य काव्य में देशज शब्द केवल वहीं प्रयोग हुए है, जहाँ कि भाव और प्रभाव की दृष्टि से उन जैसा प्रभावोत्पादक अन्य शब्द तत्सम एवं तद्भव शब्दों के भण्डार में दुर्लभ रहा है। श्री विराट मालवा निवासी है अत: उनके काव्य में अधिकांश शब्द मालवी के है। जैसे:- चिनगी, मोतिया, दूधिया, पंखिया, चन्द्रिमा, बंसवट, मैके आदि।

विदेशी शब्द : अरबी, फारसी, अंग्रेजी या अन्य भाषाओं के शब्दों को उन्होंनें अर्थ की आवश्यकतानुरूप प्रयोग किया है।

शब्द शक्तियाँ :

नभ से गिरी मगर सब खुशियाँ
अटकी रही खजूर में
अंधों को मिल गयी बटेरें
किन्तु रात ही रात में
नाक में ज्यों नकेल लगती है
मूक कोल्हू का बैल लगती है
घर से दफतर की जिन्दगी सीमित
इक खुली मुक्ति जेल लगती है।

छन्द विधान : ''छन्द पादौ तु वेदस्य'' अर्थात छन्द वेद के चरण है। यह कहकर विद्वानों ने साहित्य में काव्य क्षेत्र में छन्द के महत्व को स्वीकारा हैं। जिस प्रकार चरण विहीन व्यक्ति अपनी क्षमता के आधार पर अधिक दूर तक जाने में समर्थ नहीं होता, ठीक उसी प्रकार छन्द रहित काव्य भी गंभीर और स्थायी प्रभाव नहीं डालता, वह शीघ्र ही विस्मृति के गर्त में समाप्त हो जाता है। इस तथ्य का साक्ष्य

समसामयिक तथाकथित गद्यप्रधान छन्द -लय-हीन काव्य के अल्पप्रभाव से प्रमाणित है। चाहे मंचीय काव्य हो अथवा फिल्मी गीत सर्वत्र छन्द लय युक्त काव्य ही समादृत है, उससे मुक्त काव्य की प्रतिष्ठा और प्रभाव तुलनात्मक दृष्टि में अत्यन्त सीमित है। आधुनिक युग के सुकवि इससे सहमत है इसलिए छन्द मुक्त कविताओं के समस्त आग्रह- आन्दोलनों से बचकर छन्दयुक्त काव्य के सृजन में रत है। श्री विराट ने न केवल व्यवहारिक रचनास्तर पर अपितु सैद्धान्तिक स्तर पर भी काव्य में छन्द की सुप्रतिष्ठा हेतु सफल प्रयत्न किया है। उनका विचार है कि छन्द और लय से ही कविता काव्य संज्ञा की अधिकारिणी बनती है-

वह कविता, कविता क्या जिसमें
कोई लय या छन्द नहीं हो,
वह जीना क्या जीना जिसमें
जीने का आनन्द नहीं हो
बिक न जाये अगीतों के हाथ
गीत की जागीर! उठ

श्री विराट ने निराला की मुक्त छन्द अवधारणा पर युक्ति-युक्त दृष्टि देकर लिखा है-

''मुक्त छन्द दे गये निराला
छन्द मुक्त तो नहीं किया था
दी थी मुक्ति वर्ण मात्रा से
पर लय का संस्कार दिया था
छन्द मुक्ति की सुविधा लेकर
घोर अकवि भी कवि बन बैठे
जुगनू के भी योग्य नहीं थे।
काव्य गगन के रवि बन बैठे।।''

लगभग तीन दशक काव्य कानन में छन्द मुक्ति का काक कर्कश स्वर भरने के बाद गीत,गजल और दोहे के नाम पर पुन: छन्द की ओर वापसी के स्वर गूँजने लगे है।श्री विराट ने इस तथ्य को इन शब्दों में व्यक्त किया हैं-

'' अब भी भटक रहें हैं पहुँचें नहीं कहीं भी

जे गीत के शिखर से प्रस्थान कर गये थे।

वे लौटने लगे हैं फिर छन्द की शरण में

जे छन्द के मरण का ऐलान कर गये थे।।''

अपनी उपर्युक्त सैद्धान्तिक मान्यताओं को व्यावहारिक निरूपण श्री विराट ने समीक्ष्य काव्य में दो रूपों में किया हैं प्रथमत: हिन्दी के मात्रिक छन्दों की शास्त्रीय प्रस्तुति करके । श्री विराट के गीतों में जिन पारम्परिक छन्दों की बार-बार प्रस्तुति हुई हैं, उनमें चौपाई, शिव और गीतिका छन्द मुख्य है। उदाहरणत:-

चौपाई छन्द- १६ मात्राएँ, ४ चरण और ६४ मात्राएँ

''अदना और अनाम आदमी

जी हाँ मै हूँ आम आदमी

थोडा अपने दायें बायें

देंखें तो मुझको ही पायें

शिव:- ११ मात्राएँ,४ चरण ,४४ मात्राएँ

यह बहार किसलिए,

यह सिंगार किसलिए

गर्दिशों में प्राण की

यह पुकार किसलिए।

वीर छन्द:- ३१ मात्राएँ,८,८ एवं १५ पर यति

अशुभ न बोलो, खून न ढोलो, अपनी धरती अपना देश

कदम मिलाओ, मिलकर गाओ, जय जय अपना राज स्वदेश

गीतिका छन्द:- २६ मात्राएँ १४,१२ पर यति

सिर्फ कठपुतली बनो मत और अपने आप को

क्रूर सत्ता के करों का झूनझुना बनने न दो।

५.४ समग्र मूल्यांकन :

वस्तुत: विराट का काव्यत्व उनके कवि व्यक्तित्व के प्रौढ स्वरूप को प्रदर्शित करता हुआ विकास के नये आयामों को प्रोद्भासित करता है। उन्होने एक ओर परम्परा को सम्मान दिया है तो दूसरी ओर

आधुनिक जीवन की जटिल संवेदनाओं को सहजता से प्रस्तुत कर नव्य चेतना को अनुकूल समर्थ अभिव्यक्ति प्रदान की है। उनके गीत अनुभूत जीवन की अभिव्यक्ति के गीत है और मन की सहज प्रक्रिया से जन्मे है। अत: उनमें गीतिकाव्य की समस्त विशेषताएँ नवीन भाव बोध और नवीन अभिव्यक्ति शैली के परिप्रेक्ष्य में उपलब्ध होती है। अस्तु, रस सिद्ध, सुप्रतिष्ठित, बहुचर्चित, दर्द के गायक और एक सामर्थ्यवान आस्थावान कवि के रूप में भी विराट आधुनिक हिन्दी गीति परम्परा में अपना महत्तवपूर्ण स्थान रखते है। इसलिए श्री दिनेश सौनवलकर का यह कथन सत्य प्रतीत होता है कि ऐसे गीतकार का सृजन निश्चय ही पिछले दशक की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

श्री विराट गीत में सर्वाधिक स्थान विराट को देते है। भाव के बाद वे मानते है कि गीत को छन्दबद्ध ही होना चाहिए। बिना छन्द के गेयता नहीं आ सकती हैं। इसी तरह गीत रचना का अपना एक प्रवाह होने के साथ ही उसमें एक प्रतिध्वनि होती है। इसे अनुगूँज भी कह सकते है। उन्होंनें यथासम्भव उर्दू श्शब्दों के भी हिन्दी भाषा में उपलब्ध श्शब्दों का ही प्रयोग किया जाता है। अनेक बार उन्होंनें श्शब्द को नये रूप भी दिये हैं।

कथ्य और शिल्प की दृष्टि से विराट की गजलों में एक निश्चित विकास परिलक्षित होता हैं। कथ्य में उसकी संवेदना मुख्य रूप से प्रेम सौन्दर्य चित्रण तथा आम आदमी की त्रासदी से जुडी हुई है। व्यवस्था या सत्ता के चलते मनुष्य के जीवन में जो विवशता पैदा हो गई है उसका तीखा दंश हमें उनके गीतों में मिलता है। वे प्रेम में जितने गहरे हैं, आम आदमी के जीवन संघर्ष चित्रण में वे उतने ही साहसी और यथार्थवादी हैं। रूप की ललक और उसके चित्रण में उतने ही करूणावान और विक्षोभ से भरे है। जीवन की लंबित अनुभूतियों के चित्रण में वे जितने क्रांतिदर्शी हैं, विसंगतियों के खिलाफ लडने में वे उतने ही क्रांतिमुखी है।

वे एक कोमल कमनीय गीतकार हैं, पर विराट जी ने अपने दर्द को साज और आवाज दी है। उन्होंनें अपने रचनाकाल में हिन्दी साहित्य को १४ गीत संग्रह एवं १२ गजल संग्रह दिये। उनकी भाषा संवेदना अत्यन्त सघन और गंभीर हैं। वे विषयानुकूल सार्थक और सटीक शब्द प्रयोग करते है। शुद्ध तत्सम प्रधान संस्कृत निष्ठ परिष्कृत हिन्दी शब्दों के प्रति आग्रहवान होते हुए भी उन्होंने उदारता पूर्वक विदेशी एवं तद्‌भव शब्दों का भी चयन किया है।

❑ ❑ ❑

• अध्याय – ६ •
आधुनिक हिन्दी गीतकार और श्री चन्द्रसेन विराट के गीत

आधुनिक हिन्दी गीतकार और चन्द्रसेन विराट के गीत

आधुनिक युग की उलझनों के बीच संगीत के माध्यम से निराशा में डूबे समाज को राहत देने का काम करता है। प्राय: गीत विधा पर रोमानियत,रूप सौन्दर्य और नारी सौन्दर्य के चित्रण के साथ ही श्शास्त्रीयता का आरोप लगाया जाता है और उसकी अपेक्षा की जाती रही है।

चन्द्रसेन विराट पिछले पाँच दशकों से गीत विधा के लिए समर्पित हस्ताक्षर है। हिन्दी की कविता विधा में अनेक आंदोलन आए और गए, किन्तु विराट जी एक ऐसे गीतकार है, जो किसी भी गीतधारा से कभी भी प्रभावित नहीं हुए और उन्होंनें जिस गीत विधा से अपनी रचनायात्रा प्रारम्भ की, उसे बखूबी अब तक निभाते रहे है।

(१) नरेश मेहता : ये हिन्दी के ऐसे प्रगतिशील कवि है, जिनके पास कल्पना, भाव, विचार और भाषा की अपार शक्ति मौजूद है। इनके काव्य में इतिहास और संस्कृति का अद्‌भूत समन्वय मिलता है। उनके काव्य में भाषा की प्रौढता के साथ–साथ प्रयोगशीलता भी है। उनकी भाषा में उनके व्यक्तित्व का अध्ययनशील रूप स्पष्ट दिखाई देता है। जहाँ कवि का परम्परा के प्रति आस्था का भाव सजग है, वहीं रूढियों के प्रति उसका अंतर विद्रोही है। देश के नवनिर्माण के प्रति वह अधिक सचेष्ट है। 'दूसरा सप्तक' में इनकी कुल दस विविध श्शीर्षकों वाली कविताओं का संकलन है, जो इस प्रकार है– १.'चाहता मन, २. अंह, ३. किरन धेनुएँ, ४. उषस्–१, ५.उषस्–३, ६. उषस्–४, ७.जनगरबा चरैवैति, ८.उषस् ९.अश्व की वल्गा, १०.समय देवता।

उनकी यह कविता पाठक को गहराई से संवेदित करती है कि वह अवसन्न हो उठता है–

'तुम यहाँ बैठी हुई थी अभी, उस दिन

सेब– सी बन लाल

चिकने चीड सी वह बाह अपनी टेक पृथ्वी पर यहाँ

इस पेड जड पर बैठ

मेरी राह में, इस धूप में।

बह गया वह नीर

जिसको पदों से तुमने छुआ था।

कौन जाने धूप उस दिन की कहाँ है।

जो तुम्हारे कुन्तलों में गरम फूली

धुली, धौली लग रही थी।

प्रयोगवाद के लघु मानव और खण्डित मानव के स्थान पर वे विराट मानवता और अखण्डता पर विश्वास करते है। मानवता का अंकन करने के लिए समय देवता का आव्हान कवि की मौलिक कल्पना है।

(२) धर्मवीर भारती : विशुद्ध प्रकृति चिन्तन से लेकर मानवीय भावनाओं को उद्दीप्त करने एवं अनुभूतियों को आलंकारिक रूप में मुखरित करने की प्रवृति उनकी अनेक कविताओं में परिलक्षित होती हैं। प्रणय और प्रकृति की व्यक्तिनिष्ठ अनुभूतियों के उपरान्त समसामयिक जीवन की विसंगतियों की यथार्थ अभिव्यक्ति 'सात-गीत-वर्ष' की अनेक कविताओं में व्यक्त हुई है। भारती के काव्य में निहित आस्था ही मानव को मुक्त कर सकती है, क्योंकि आस्था की ताकत मानव की सबसे बडी शक्ति है। संघर्ष की अग्नि में तपकर कवि की प्रतिभा में भी निखार आया है। भारती जी के अनुसार- कविता ही वह संजीवनी है, जो सुकुमार संवेदनाएँ जगााकर, अन्तर्जगत को मानवोचित कर, मूर्छित मानव मूल्यों को फिर से प्रतिष्ठित कर सकती हैं।

प्रेम की अभिव्यंजना भारती जी के काव्य की पहचान हैं, जो संपूर्ण रचना कर्म में झंकृत हुई हैं। कवि की संवेदना, ताकत एवं सार्थकता सब कुछ प्रेम ही है, जो जीवन के अंतिम क्षणों तक उन्हें सृजन की प्रेरणा देती रही। स्व से सर्व की तरफ मोडा और वे मानवीयता को अर्थ एवं नूतन असितत्व प्रदान किया है। महानगरीय जीवन जीने वाले भारती जी का झुकाव गाँव की ओर अधिक रहा है। भारती समसामयिकता के यथार्थ परिवेश से द्रवीभूत हो, मानव मूल्यों की तलाश करने के लिए संघर्षरत रहे हैं। मानव मुक्ति की आंकाक्षा एवं मानवीयता की पुन: स्थापना करने का भाव लिए कवि की बैचेनी अपनी कविताओं के माध्यम से जिन्दगी की लय पाने की रही है।

भय, दहशत और स्वार्थी व्यावसायिकता से भरपूर हिंसक राजनीति की आपातकालीन परिस्थितियों और घटनाओं के परिदृश्य को भारती जी ने मुनादी काव्य में व्यंग्य के साथ उजागर किया है।

(३) गिरिजा कुमार माथुर : व्यास सम्मान से सम्मानित कवि का प्रथम काव्य संग्रह मंजीर है। इस संग्रह की रचनाओं में स्पष्ट ही उत्तर छायावादी संस्कारों को रेखाकिंत किया जा सकता है। छायावाद व प्रगतिवाद के सन्धिकालीन परिवेश को समेटे हुए १९४६ में नाश और निर्माण का प्रकाशन हुआ। पुरातन मोह और नवीन आकर्षण द्वन्द उपरोक्त कृति की कविताएँ स्पष्ट कर तत्कालीन कवियों की द्वन्दमय मन:स्थिति का प्रतिनिधित्व करती है। ध्वंस और निर्माण के परिप्रेक्ष्य में जीवन के दो पक्षों को उजागर किया है।

धूप के धान नामक कविता संग्रह में कवि ने अपनी चेतनाभूमि को व्यापकता दी है। कवि टिकने के लिए जिस विराट भूमि की तलाश में निरन्तर संलग्न था यहाँ आकर उसकी चेतना व्यापक सूत्रों की खोज कर सन्तोष प्राप्त करती है। प्रेम, सौन्दर्य, रूप, रंग के प्रति रोमानी आसक्ति इस संग्रह में भी विद्यमान है लेकिन इसके साथ आशावादी स्तर, मानवजीवन और उसके स्वर्णिम भविष्य के प्रति अखण्ड विश्वास और सामाजिक वैषम्य से विद्रोह करती हुई कवि की प्रखर सामाजिक दृष्टि सभी इस कृति में देखा जा सकता है।

शिला पंख चमकीले के प्रारम्भ में कवि ने लिखा है कि साहित्य जगत में संक्रान्ति पूर्ण आस्था के कारण ही नयी संवेदना की आवश्यकता अनुभव की गई, परिणामस्वरूप शनै:शनै: नयी कविता का उद्‌भव हुआ और कालान्तर में यही विकास प्रक्रिया के बिन्दु साहित्यिक धारा के रूप में परिवर्तित हो गए। डॉ. रमाकान्त शर्मा के शब्दों में– ''शिल्प के क्षेत्र में माथुर जी ने पुरानी परम्परा से भिन्न निजी लाक्षणिक शैली का निर्माण किया है। शब्द, भाषा और छन्द की दिशा में अनेक प्रयोग किए हैं। परम्परागत छन्दों को नया मोड देते हुए अन्य भाषाओं तथा लोकसाहित्य के छन्दों को भी नवीन परिष्कार देकर इन्होंनें अनेक नए छन्दों का निर्माण किया है। वस्तु और शिल्प दोनों क्षेत्रों में इनकी समन्वयवादी दृष्टि ने कई कविता को पुरानी परम्परा के विरोध में न रखकर उसके स्वस्थ अंगों की स्वीकृति द्वारा नईशक्ति और गति दी है। वैसे माथुर को मांसल प्रेम का कवि माना गया है, लेकिन उन्होंनें जीवन के यर्थाथ को महतव दिया है। वे अस्तित्ववादी दर्शन से प्रभावित हैं। फलत: उनके काव्य में वेदना और विषाद की गहरी छाया दिखाई देती है। आधुनिक सौन्दर्यबोध तथा परिष्कृत भावाभिव्यक्ति के क्षेत्र में माथुर बेजोड है।''

नूतन प्रयोगों और वैयक्तिक चेतना के सृजनशील कलाकार होते हुए भी उनकी अधिकतर रचनाओं का उत्स बिन्दु सामाजिक जीवन के नूतन निर्माण की साग्रह आतुरता और सामान्य जीवन की विकासोन्मुख दीप्त आस्था में प्रवाहित है। उनकी कविता में जीवन के प्रति स्वीकृति है, उल्लास है, आशा का स्वर है, प्रकृति से लगााव है, जमीन से रिश्ता है।

(४) बलवीरसिंह रंग :

किसी तरह भी करो राष्ट्र को बंधनहीन करो
आज दुख सहने पर भी रोक
आज कुछ कहने पर भी रोक
बंधन की इस परम्परा को साधनहीन करो
तुम्हारे आगे युग निर्माण
तुम्हारे पीछे जन–मन–प्राण
पशुता के पागल प्राणों को कंपनहीन करो
एक को शोक एक को हर्ष
मिटा दो यह श्रेणी संघर्ष
मानवता की शपथ मनुज को क्रंदनहीन करो।

लोकप्रिय कवि रंग आजादी की लडाई से प्रत्यक्षतया जुडा हुआ यौद्धा प्रवेश गीत, सांझ सकारे, संगम, मेरा गांव गरीब है, सिंहासन और उनकी अंतिम कृति गंध रचती छन्द उनके व्यक्तित्व की छाया प्रकट करती है। रंग जी ने गजल के शरीर में गीत की आत्मा को प्रविष्ट करा देने का अभिनव प्रयोग भी कई बार सफलतापूर्वक कर दिखाया है।

(५) गोपालदास नीरज : पिछले चार दशकों से निरन्तर अपनी वाणी से मंच पर गूंजने वाले श्रुति मधुर स्वर के स्वामी, अपने गीत के जादू से श्रोताओं को सम्मोहित, रसालोडित करने वाले कवि नीरज अपने आप में एक विशिष्ट व्यक्तित्व हैं। वर्तमान मंचीय कवियों में से नीरज जी एक ऐसे कवि हैं जिन्होंनें पारम्परिक गीत को नष्ट होने से बचाया और उसकी साहित्यिक मर्यादा को सुरक्षित रखा है।

नीरज जी की सामाजिक और राजनैतिक चेतना और मानवीय संवेदना इतनी प्रबल है कि देश तो देश, विदेश में भी घटित किसी अन्यायपूर्ण प्रकरण पर वे मौन नहीं रह सकते, एक जागरूक स्वतन्त्र चेतना से युक्त जनतांत्रिक नागरिक की हैसियत से वे अपनी श्सशक्त काव्य वाणी के माध्यम से निर्भीक प्रतिक्रिया प्रकट करते हैं और निडर होकर सही का समर्थन और गलत का विरोध करते हैं।

नीरज के गीत मंच पर भले ही अधिक लोकप्रिय ना हुए हों पर उनमें भावना की गहराई, अनुभूति की प्रामाणिकता, सहजता, संवेदनीयता, अभिव्यक्ति की चारुता यानी गीत के कलात्मक मूल्यों की दृष्टि

से अपूर्व और अनुपमेय है। उनकी कृतियों में विभावरी, प्राण गीत और दर्द दिया है उत्कृष्ट है। सामाजिक दायित्व के प्रति आरम्भ से ही सजग कवि नीरज देश की गरीबी, भूख, बेकारी, स्त्रियो का श्शोषण जैसे विषयों को अपनी लेखनी का आधार बनाया। अपनी कविता **'अब युद्ध नहीं होगा'** में प्रकृति और मानव जीवन की हरीतिमा का चित्ताकर्षक चित्रण करते हुए युद्ध के संभावित परिणामों की विभीषिका की तरफ कवि ने ध्यान दिलाया। शांति के पक्षधर नेताओं के सत्प्रयासों में पूर्ण आस्था व्यक्त करते हुए कवि ने कविता के उपसंहार को निराशा के अंधकार के बजाय आशा के प्रकाश की तरफ मोड दिया है। नीरज की गीत शैली में एक हिस्सा आत्मा-परमात्मा के रागात्मक संबंधों पर आधरित रहस्यवादी श्शैली के प्रेम गीतों का भी हैं।

(६) शंभुनाथ सिंह : छायालोक में जीवन और जगत के रंगीन चित्रों को आधार बनाकर छायालोक के अनेक गीत उपजे हैं तो उदयाचल में बाह्य जगत की पृष्ठभूमि पर उभरे हुए व्यक्तिगत जीवन के विश्वास, विद्रोह आदि की भावनाएँ स्फुरित हुई है। एक ही समय में दो विपरीत दिशाओं (स्वप्न और यथार्थ) की तरफ संचरण को उचित और स्वाभाविक ठहराते हुए कवि लिखता है कि-''जीवन में यदि कल्पना और स्वप्नों को सत्य और यथार्थ के साथ समझौता करके बने रहने का अधिकार है तो काव्य में भी दोनों तरह की भावधाराएँ निर्विरोध रूप से साथ-साथ प्रवाहित होती रहेगी। मन्वंतर में सृष्टि के आरम्भ काल से आज तक की जीवन यात्रा में सुख-दुख, धर्म-अधर्म, न्याय-अन्याय आदि से संबधित अनेक ऐतिहासिक दृश्यों के साथ मनुष्य के अपराजेय संकल्प और कर्मनिष्ठा का लेखा- जोखा प्रस्तुत किया गया है। दिवालोक में वैयक्तिक चेतना की सीमाओं से संघर्ष करते हुए वस्तुजगत और लोकजगत को अंगीकार करने की सतत चेष्टा का दावा निराधार नहीं है।''

गीत की प्रासंगिकता पर उनका कहना है- गीत वह माध्यम है, जो मनुष्य के अंतर्लोक को उसकी समग्रता में अभिव्यक्त करता है। उसमें भावनाओं और मनोदशाओं की सूक्ष्म तरंगों को पकडकर रूपायित करने की जो शक्ति है, वह काव्य की अन्य किसी विधा में नहीं है। यह तर्क आधारहीन है कि आज के बौद्रिक, वैज्ञानिक और यांत्रिक युग में गीत की कोई प्रासंगिकता नहीं रह गई है। वास्तविकता तो यह है कि आज का मानव समाज वैज्ञानिक और यांत्रिक प्रगति के तीव्र प्रवाह में जिस गति से बहता जा रहा है, उससे उसकी मानवीयता ही खतरे में पड गई है। जीवन मूल्यों की ओर मनुष्य को पुन: उन्मुख करने की दृष्टि से गीतकाव्य की उपादेयता को झुठलाया नहीं जा सकता। ग्रामप्रधान भारत देश को जनजीवन के साथ जोडकर रखने में कविता ही गीतात्मक और छन्दोबद्ध हो सकती है।

(७) वीरेन्द्र मिश्र : वीरेन्द्र जी अपनी काव्य साधना के प्रति अत्यन्त सजग, समर्पित, और निष्ठावान रहे है। उन्होंनें गीतों और प्रगीतों से सम्बन्धित ११ कृतियाँ लिखी है इनके अतिरिक्त चार सौ पृष्ठों का वृहत संकलन गीत विविधा भी है। सृजन और संघर्ष की प्रेरणा उन्हें अपने पिता से मिली। सामाजिक चेतना वीरेन्द्रजी के व्यक्तित्व, संघर्षशील जीवन और उनके विश्वासों से घनिष्ठता से जुडी है। वीरेन्द्र मिश्र के कितने ही गीतों में यह तरलता, सौन्दर्यानुभूति की यह स्निग्धता, शिल्प की चारूता और भाषा की सहजता एक साथ दिखाई देती है। जीवन संघर्षो में अविराम जुझते हुए भी जीवन की शाश्वत सौन्दर्य सत्ता की अवेहलना उन्होंनें कभी नहीं की, उसके प्रति नीरस विरक्ति का एक कण भी उनके काव्य में नहीं है।

(८) रमानाथ अवस्थी : पिछले चार दशकों में उन्होंनें मात्र १०० गीतों की रचना की है। वे एक समर्पित गीत शिल्पी की सक्षम लेखनी के अनुरूप भले ही ना कही जाये पर किसी रचयिता के सृजन एवं शिल्प को गुणवत्ता की अपेक्षा परिमाण के आधार पर परखना पडे ये सही नहीं हैं।

रमानाथ जी ने भले ही सीमित सृजन किया है, पर उनकी गीत सृष्टि के तीन प्रमुख आकर्षण है– अनुभूति की रागात्मकता, उस रागात्मक अनुभूति के मेल मे आए विचार सूत्रों अथवा सूक्तियों का संतुलित उपयोग और नितान्त सहज, सरल अभिव्यक्ति यानि भाषा की विलक्षण सादगी। कवि का मानना है कि अगर काव्य रचना पाठक के ह्मदय को थोडा भी छू सके तो वह सार्थक है। कवि आगे कहते है कि मैं स्वान्त सुखाय के लिए ही काव्य सृजन करता हूँ। अवस्थी जी के गीत उनके अपने जीवन और व्यक्तित्व के सीधे–सादे छवि चित्र हैं और उनका प्रयास यह है कि उनके जीवन चित्रों में ही पाठक अपना जीवन चित्र अनुभव करे।

अभिव्यक्ति की चारूता के साथ वे जीवन यथार्थ को अधिक तीव्रता से अनुभव करने लगे हैं, आत्म निरीक्षण की भूमि पर उतर कर वे हमें किसी कठोर सत्य से आँख मिलाने को वे विवश करते हैं। जीवन की अस्थिरता और मृत्यु की अनिवार्यता के निर्मम एहसास के बीच भी वह मानवीय ममत्व और संवेदना के सूत्र छोडने को तैयार नहीं हैं, वरन् जीवनावस्था के प्रति पूरी तरह समर्पित दिखाई देती है।

अपना ही चेहरा चुभता है काँटें जैसा
जब संबंधों की मालाएँ मुरझाती हैं।
कुछ लोग कभी जो छूटे पिछले मोंडों पर
उनकी यादें नींदों में आग लगाती है।

निष्कर्ष : अनेक आधुनिक गीतकारों के साथ विराट जी की रचनाओं का मूल्यांकन करने पर ये स्पष्ट हो जाता है कि विराट जी के मन में विरहिणी बैठी है, जिसके दर्द को वे गीतों में अभिव्यक्ति देते रहे है। वे अपने आप में एक ऐसे व्यक्तित्व के धनी है जिन्हें यश और मान–सम्मान की कभी चाह नहीं रही उनकी लेखनी सदैव ही सामाजिक बदलाव के प्रति सजग बनी रही।

• अध्याय – ७ •

चन्द्रसेन विराट के गीतों में समसामयिक चिन्तन एवं चेतना की अभिव्यक्ति

किसी भी कृति एवं व्यक्तित्व पर उसके आस–पास के वातावरण एवं परिस्थितियो ंका प्रभाव पडता ही है। क्योंकि मानव एक सामाजिक प्राणी हैं अत: अपने आस–पास की परिस्थितियों से प्रभावित होना निसन्देह स्वाभाविक हैं। किन्तु रचना के सम्पन्न होते ही उसके लिए ये आवश्यक हो जाता है कि वह पाठकों तक सम्प्रेषित हो। यह रचनाकार की क्षमता है कि वह अपने सर्जनात्मक अनुभव या शब्दों को कहाँ तक सम्प्रेष्य बना पा रहा है। यह रचना का सरलीकरण नहीं अपितु रचना और रचनाकार दोनों के लिए एक कठिन चुनौती है किन्तु यदि पाठक की संवेदनात्मक शिराएँ सजग ना हों तो,रचना का यह सम्प्रेषण कठिन हो जाता है जो रचनाकार का अभीष्ट होता है।

''आयु भर हम अक्षरों की रचना करते रहें,
छन्द में ही काव्य की नवसृजना करते रहें,
स्वर मिले वह साँस को, हर कथ्य जो गाकर रहे,
जिन्दगी के सुख–दु:खों की व्यंजना करते रहें
वक्ष का रस स्रोत सूखे दिग्दहन में भी नहीं
नित्यनीरा वेदना की वन्दना करते रहें।''

प्रस्तुत अध्याय में विराट के समस्त गीत संग्रहों का अध्ययन इस दृष्टि से किया गया है कि कवि का रचनाशील सृजन तत्कालीन युगीन स्थिति को किस प्रकार निर्भीकता पूर्वक अभिव्यक्ति देता है एवं युगीन स्थितियों से वह किस स्तर तक प्रभावित हुआ है?

प्रासंगिकता और सृजनशीलता, प्रतिबद्धता और अजनबीपन, जादुई और क्रान्तिकारी, यथार्थ और अयथार्थ, तात्कालिक और मिथकीय, सपाट और काव्यात्मक के तनाव में आज के गीत हमारे समय के मार्मिक साक्ष्य बन चुके है। आज का गीत दर्द पर चीखने की अपेक्षा समझदार चुप पर अधिक भरोसा करता है। इसी अर्थ में वह पहले से कहीं अधिक वयस्क संवेदन का प्रमाण देता है। अनुकरण और अनुभव

मे ंफर्क करने की माँग गीत हमसे करता है। आस-पास के वातावरण के प्रति जैसी सजग प्रतिक्रिया आज के गीत में प्रकट हुई है। वस्तुओं की जो व्यक्त और अव्यक्त टकराहट गीत में प्रकट हुई है, वह रचनात्मक समझ और भाषा का बिल्कुल नया अनुभव है। प्राचीन काल में गीत में प्रयुक्त वस्तु सन्दर्भ केवल बाह्य अलंकरण की तरह प्रकट होते थे, वे किसी दूसरी वस्तु के उद्दीपन के लिए होते थे- किन्तु अब वे अपने आप में, एक स्वायत्त स्थिति में भी व्यवस्था और व्यक्ति के बीच पसरे गहरे तनाव को व्यक्त करता है। यह सजगता गीतकारों को एक विनम्र आत्मपरीक्षण की ओर ले जाती है।

चन्द्रसेन विराट अपने समय के प्रति उतने ही सजग रहे है, जितने शिल्प के प्रति वे माने जाते हैं। यहाँ तक कि उन्होंने हिन्दी गजल को मुक्तिका और श्शेर को द्विपदी नाम दिया है। गीत और गजल को उर्दू शब्दावली से मुक्त कर उन्होंनें उसे हिन्दी का शुद्ध रूप दिया है। साथ ही गीत के मूल भाव को सुरक्षित रखते हुए उसमें विविध नये-नये प्रयोग किये हैं। उनके गीतों में समय की निमर्मता, समाज की यात्रा, संप्रास, घुटन आदि निम्न उदाहरण में दर्शनीय है-

''बहरों का दरबार, जोर से बोल यहाँ
मिमिया मत हुँकार, जोर से बोल यहाँ
इनके कान निवेदन नहीं सुना करते,
सुनते है ललकार, जोर से बोल यहाँ ''

चन्द्रसेन विराट का यह विचार है कि वर्तमान समय कितना भी मुश्किलों भरा क्यों ना हो, किन्तु आने वाला भविष्य उज्जवल ही होगा-

'' जो भविष्य में कभी भी ठोस रूपाकार लें,
सत्य के उस स्वप्न की हम कल्पना करते रहें।''

(इस सदी का आदमी)

कोई भी रचनाकार अपने युग और समय की सच्चाइयों से निरपेक्ष नहीं रह सकता, वह अपने आस-पास जो कुछ भी देखता है, उसे वह अपनी रचना के माध्यम से व्यक्त करता है-

'' समय सापेक्ष हो जो भी स्वयंभू कवि रचता,
विषय खुद सूझ जाता है, विषय माँगा नहीं जाता।''
''न मरता शत्रु ही केवल, जगत जब साथ मरता हो।

मनुज हित में प्रलय क्षण ध्वंयमय माँगा नहीं जाता।''

(इस सदी का आदमी)

गीतकार अपने लेखन के माध्यम से मनुष्य के दुख–दर्द की अभिव्यक्ति करने की इच्छा रखता है, वह अपने गीतों के माध्यम से समाज की स्थितियों को प्रकट कर उनके समाधान के भी उपाय सुझाता है, इसलिए उसने लिखा है–

'' सत्य, शिव, सुन्दर हमारी लेखनी का लक्ष्य हो।
श्रेष्ठ मूल्यों की सतत् संस्थापना करते रहें।''
युद्ध से निरपेक्ष मत को विश्व अनुमोदन मिले।
मनुज के कल्याण की प्रस्तावना करते रहें।''

वह जीवन की अंतिम साँस तक समाज की पीडा को चित्रित करना चाहता है, इसलिए वह ईश्वर से प्रार्थना करता है कि–

''दे नयी उद्‌भावनाएँ, प्राण उर्जस्वित रखे।
हम प्रणव हो प्रेरणा की प्रार्थना करते रहें।''

(इस सदी का आदमी)

गीतकार की हर रचना में कहीं ना कहीं मानव सेवा के भाव परिलक्षित होते हैं उसके कृतित्व में मनुष्य के प्रति संवेदना और उसकी सुख, समृद्धि की कामना निहित है। वह सर्वधर्मसमभाव स्थापित कर सामाजिक परिवर्तन करना चाहता है। गीतकार विराट समसामयिक सन्दर्भो से जुडा है अत: वह समाज के प्रधान वर्ग को सम्बोधित करते हुए कहता है कि–

''खतरा है चहुँओर कि राजा सोना मत,
जाग रहे हैं चोर कि राजा सोना मत,
उनके जीवन के शिखर है उन्नत,
श्शेष के तो सपाट हैं प्यारे।''
''यदि है तू मसीहा तुझे उठना ही पडेग़ा
तुझको पुकारता है जमाना, जमाने के लिए उठ।''

(न्याय कर मेरे समय)

प्रसिद्ध गीतकार रमानाथ अवस्थी ने उनके गीतों के बारे में लिखा है कि – ''रचनाकार अपनी मूल प्रवृत्ति में दैन्य के प्रति विद्रोही होता है, उसके विद्रोह अथवा उसके क्षोभ को अनन्तोगत्वा केवल उसकी रचनाएँ ही संभालती है। यह प्रक्रिया जितनी गहन होती है उतनी ही सहज बनती है कविता।''

इस दृष्टि से जब–जब मैंने चन्द्रसेन विराट की कविताएँ, गीत या गजल पढी तो लगा कि जैसे उनका रचनाकार कविता के गहाने एक ऐसी अनूठी शब्द–सृष्टि कर रहा है जो उसे उस बिन्दू तक ले जायेगी, जहाँ एक ऐसा गुलाब है, जो अकेला होकर भी पूरी फुलवारी से अधिक आकर्षक और हमारी पहचान के योग्य हैं मेरे लिए विराट की कविता उसी गुलाब की तरह है। मुझे विश्वास है कि यह गुलाब काव्य देवता के लिए एक आनन्दमय छन्द जैसा सिद्ध होगा।

(लडाई लम्बी है)

विवेच्य गीतकार केवल भावुक श्रृंगाार के गायक नहीं है, इसके साथ ही वे प्रगतिवादी तेवर के भी सशक्त गीतकार है। सुप्रसिद्ध कवि भवानीप्रसाद मिश्र का विचार है कि – ''चन्द्रसेन विराट ने अपने गीतों में यथार्थ को चित्रित किया है, उनमें समय का सत्य और यातना उपस्थित है।''

दिनकर, सोमवलकर के शब्दों में कहें तो चन्द्रसेन विराट गीत विद्या को समर्पित एक विशिष्ट हस्ताक्षर है, उन्होंनें गीतों, गजलों और मुक्तकों के माध्यम से प्रणय, श्रृगाार, राष्ट्रीय भावनाओं, आज के आदमी के अकेलेपन तथा घुटन को सार्थक अभिव्यक्ति दी है। उसके अन्र्तमन में जो दर्द की बाँसुरी है, वह चुप नहीं रहती–

स्वर पर चुप्पी की साँकल दे।
कितना भी शब्दों से बचना
तेरे जाने या अनजाने
तुझसे हो जायेगी रचना
तू परहेज कर,पर तेरे
भीतर जो रस का सोता है
उसे फूटना है फूटेगा
सुन विराट तू लाख कहे
पर तुझसे गीत नहीं छूटेगा।

(किरण के कशीदे – कामना से)

गीतकार का मानना है कि रचनाकार को किसी भी परिस्थिति में भयभीत नहीं होना चाहिए, चाहे किसी को उसकी बात प्रिय लगे या अप्रिय–

''बात कडवी लगे, मगर बोलनी पड रही
यदि हमीं ना कहे, कौन कह पायेगा।
औसतन आदमी तो दु:खी है यहाँ
आँकडों का भले और निष्कर्ष हो
जिन्दगी के स्तरों का पतन हो रहा
कागजों में भले खूब उत्कर्ष हो।
भूख रोटी मिटायेगी, नारे नहीं
पेट भूखा न कुछ और गर पायेगा।''

एक ओर उदाहरण देखिये–

''ये अँधेरे ये गुफाएँ अब किसे आवाज दें
कौन सुनता है अब सदाएँ अब किसे आवाज दें।
सिर्फ दीवारें सुरंगे या कुएँ कब्रें यहाँ
किस तरफ से कहा जाएँ अब किसे आवाज दे।
कंठ पर पँजा गडाये हैं परिस्थितियाँ कठिन
छटपटाती चेतनाएँ अब किसे आवाज दें।''

बीता समय भुलाकर भविष्य और नवीनता के बारे में सोचिए–

''अब तो मत प्राचीन सोचिए
नूतन और नवीन सोचिए
भूतकाल भूलें, नवयुग में
बिल्कुल अर्वाचीन सोचिए।''

विराट भले ही प्रेम की पीर के गायक है, पर एक रचानाकार के दायित्व से भी वे अनभिज्ञ नहीं है। वर्तमान को खुली आँखों से देखकर, समाज को भविष्य के प्रति सचेत करते हुए उन्होंने अपना कविकर्म निष्ठा के साथ पूर्ण किया है।

७.१ समकालीनता का अर्थ

समकालीनता : साहित्य गहन मानवीय अनुभवों से संपृक्त होकर ही आत्मीय बन सकता है। आज हमें विचारना होगाा कि समकालीनता और परम्परा का रिश्ता संघर्ष का है या एकत्व का? समाज के नियमों का ज्ञान करना, उन्हें भोगना और अनुभव करना ही समकालीनता की सामाजिक अवधारणा है।समकालीनता को केवल कालवाची प्रत्यय नहीं, वरऩ एक बोध और मूल्य के रूप में देखा जाना चाहिए। वह तत्काल मूल्यों की खोज से जुडी है। समाज के नियमों का ज्ञान करना, उन्हें भोगना और अनुभव करना ही समकालीनता की सामाजिक अवधारणा है। हमारे आस-पास जो कुछ हो रहा है, उतना ही समकालीन नहीं है अपितु हमारे बीच आज जो छीज रहा है, चाहे वे हमारे जीवन मूल्य हो या हमारी परम्पराएँ, उनकी रक्षणीयता और पुनर्सृष्टि का सवाल भी इससे जुडा है। अत: समकालीनता का तात्पर्य अपने अतीत और भविष्य से विछिन्न वर्तमान काल-खण्ड नहीं है। यह तो अतीत में निर्मित होकर भविष्य की कुक्ष में प्रविष्ट होकर, एक प्रवाह के रूप में हमारे सामने आती है। जिज्ञासु मनुष्य स्वभावत: सामाजिक-ऐतिहासिक यथार्थ को जानना चाहता है। इस कार्य में यदि समकालीन साहित्य अभिव्यक्ति की नई पद्धतियों को एवं मानवीय स्वभाव की जटिलताओं को समझने की समझ नहीं दे पाता तो हम उसकी श्शरण में क्यों जायें? समकालीनता भी सामाजिक चेतना की तरह सामाजिक मनोविज्ञान में एक बेहद कठिन और जटिल प्रत्यय है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी सुविधाओं सें यदि आज की सभी समस्याओं का समाधान हो पाता तो संसार में न्याय का श्शासन हो जाता, किन्तु ऐसा नहीं है। इस कार्य की निष्पति मानस की गुणवत्ता से ही सम्भव है, जो आज के मानव के पास है। वास्तव में समकालीनता व्यक्तिगत जिन्दगी की और विराट समाज और इतिहास की समस्याओं से जुडी होती है और विराट के काव्य में व्यक्तिगत एवं सामाजिक जुडाव होने के कारण वह समकालीनता से ओत-प्रोत है।

गीतकार एक साथ भाव, वस्तु, और संदर्भो के अनुकूल काल के दोनों छोरों पर समानान्तर यात्रा करता है। समकालीन रचना का कार्य परम्परा के दरवाजे का घ्वस्त करना नहीं अपितु उसे खोलना है। रचनाकार नए यथार्थ की खोज केवल अपने लिए नहीं,वरन् समाज के लिए करना चाहता है। कोई भी रचना अपने आप में समकालीन नहीं होती वरन् उसे पढने पर जो घटित होता है, वह समकालीन होता है। रचना में समकालीनता का दिग्दर्शन होने पर संवेदनात्मक ताजगी का बोध होता हैं।

अंग्रेजी श्शब्द कंटेम्पोरेनिटी का हिन्दी पर्याय समकालीनता है, जिसका अर्थ किसी निश्चित कालखण्ड में जीना है। अपने युग बोध, इतिहास बोध तथा समसामयिक चेतना से जुडे रहने का द्योतक

है। समकालीनता एक मूल्य दृष्टि है, विचार दृष्टि है जिसमें अपने देश काल और इतिहासबोध से तटस्थता अपनाकर प्रेम, आध्यात्म, तथा प्रकृति की सुदंरता के शाश्वत बोध की कल्पना की जाती है। यह अपने गत्यात्मक दौर से संपृक्ति की अवधारणा है। यह अपने ऐतिहासिक संक्रमण एवं युग बोध से रूबरू होना है। कवि रघुवर सहाय समकालीनता पर टिप्पण करते हुए कहते है कि – ''समकालीनता भविष्य के प्रति पक्षधरता का दूसरा नाम है। काव्य और गीत में समकालीनता की सही पहचान के लिए हमें कवि की भाषा और उसके भावबोध के परस्पर संबंधों को जानना चाहिए।'' विश्वम्भनाथ उपाध्याय कहते है कि–'' समकालीन काव्य में काल अपने गत्यात्मक रूप में है, ठहरे हुए क्षण अथवा क्षणांश के रूप में नहीं। यह काल क्षण की कविता नहीं काल प्रवाह की, आघात और विस्फोट की कविता है। समकालीन हिन्दी गीत ने भारतीय जन जीवन को अत्यन्त सकारात्मक रूप में, इसकी कमियों को उद्घाटित करते हुए उभारा है। यह जीवन में भाग लेते हुए, समस्याओं से लडते, जुझते आम आदमी के गीत है, जो विपरीत स्थितियों में भी मानवीय मूल्यों की सुरक्षा चाहती है। इसमें निराशा के स्थान पर संघर्ष और पराजय के स्थान पर विद्रोह दिखाई देता है। ये जीवन का सही मर्म तलाशना चाहते है; इसलिए इसमें हालातों का जिक्र इस तरह नहीं होता कि हमें वह परेशानियों की फेहरिस्त लगे। समग्रता में व्यक्ति की अस्मिता की पहचान करते हुए वह सकर्मकता में विश्वास करती हुई हमारे अनुभवों के निजी संसार को वृहत्तर समाज से जोडती है। आज के सजग संवेदनशील कवि को अनुभव हो रहा है कि कठिनाइयाँ बडी हैं। ये कठिनाइयाँ ऐसे कवियों को अनुभव हो रही है– जिनकी चिन्ता एक ओर उनकी प्रतिबद्धता, विचारधारा, सामाजिक सलंग्नता व संघर्ष चेतना है, दूसरी ओर खुद कविता भी जिनकी कम जरूरी चिन्ता या सरोकार नहीं है।

७.२ चेतना का अर्थ एवं प्रकृति :

सामान्यत: सृष्टि जड एवं चेतन दो रूपों में व्याप्त है। जड रूप में किसी प्रकार की संवेदना और सजगता का अभाव है। इसके विपरित इच्छा, संवेदना और सजग क्रियाओं से समपन्न रूप को चेतन कहा जाता है। चेतनता द्वारा ही हमें सभी प्रकार के सत्– असत् तत्वों का बोध होता है।

चेतना शब्द को विद्रान आत्मवाचक मानकर चित् धातु से कर्ता अर्थ में ल्यप् प्रत्यय से चेतना शब्द बना है। इस चेतन शब्द के सामान्यत: अण्डरस्टेंडिग, सेंस, इण्टेलीजेंस, कॉन्सीयसनेस, मेण्टल परसेप्सन आदि आधुनिक भावबोध वाले शब्दों के गृहीत अर्थो का प्रयोग किया जाता है। हिन्दी में चेतना के लिए प्रज्ञा, बुद्धि, मेधा, मति, सजीवता, ज्ञानात्मक मनोवृत्ति, ओज, अवबोधन, चिन्तनशक्ति, संवेदनशीलता, मानसिक सामर्थ्य आदि शब्द दिये गये है।[१]

विष्णुकान्तशशास्त्री का कथन है कि – जिज्ञासा, श्रवण, ग्रहण, धारणा, ऊहापोह, अर्थविज्ञान तथा तत्वबोध चेतना के सात सोपान है, जिन्हें क्रमश: तय कर हम आगे बढते है।[२]

चेतना उन सभी क्रियाओं का योग है, जो वस्तुगत यर्थाथ के बारे में आदमी की समझ और उसकी व्यक्तिगत समझ से सक्रिय रूप में यहायक होती है।

नरेन्द्र सिंह का कथन है कि चेतना का जन्म मनुष्य की सामाजिक उत्पादन प्रक्रिया में होता है और यह भाषा से अविभाज्य रूप में जुडी है।

मनोविज्ञान के अनुसार चेतना मन की वह स्थिति है, जिसमें बाह्य जगत् के प्रति संवेदनशीलता, तज्जन्य तीव्र अनुभूति तथा आवेग, इनके चयन या निर्णय की शक्ति और इन सबके प्रति वर्तमान चिन्तन रहता है।[३]

वास्तव मे चेतना मनुष्य को विवेकसम्पन्न बनाती है तथा उसे युगबोध की दृष्टि प्रदान करती है। चेतना सामाजिक घटनाओं, परिघटनाओं की प्रतिक्रिया स्वरूप मानव मस्तिष्क में उपजी वह निर्णय शक्ति है, जिससे वह सम्पूर्ण विश्व को देखता है। चेतना विवेक, बुद्धि और जागरण की भावना से युक्त होकर अविच्छिन्न रूप में प्रवाहित होती रहती है युग की अधोगति और विविध प्रतिकूल परिस्थितियों में जो विचारधारा की प्रतिभा, आकर्षण दीप्त बनकर चमक उठे, और जिसके प्रभाव से समूचे युग में नवजागरण की लहर दौड जाये, वही चेतना है।[४]

व्यक्तियों की भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों में सामंजस्य स्थापित कर , उनको संगठित कर, उनकी शक्ति को रचनात्मकता और लोकोन्मुखी बनाये वह है चेतना।

७.३ श्री चन्द्रसेन विराट के काव्य में समकालीन चिन्तन एवं चेतना :

गीतकार विराट के गीतों में व्यक्ति, समाज,परिवार, परिवेश, भाव एवं काल सब कुछ उतर आया है, जिसके साथ कवि का आत्मीय जुडाव है। जीवनानुभव की यह व्यापकता विशिप्ट जीवन विवेक की गहनता का सूचक है। कवि का वहीं अनुभव सार्थक है, जो निज से चलकर पर तक की यात्रा करता है और निज अनुभव व्यापक आयाम ग्रहण कर सामाजिक सच्चाइयों का रूप धारण कर लेता है। उनके गीतों में उपभोक्ता संस्कृति की परिणति, अर्थतंत्र के परिवर्तन, तकनीक की अतिवादिता से अकेलेपन की गुहा में मानसिक रूप से संत्रस्त मानव, टूटते परिवार, बिखरते जीवन मूल्य आदि का मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है।

यहाँ मात्र गीतकार का अभावग्रस्त जीवन चित्रित नहीं हुआ है अपितु उसके माध्यम से सम्पूर्ण समाज का अभाव मूर्तिमान हो उठा है। गीतकार विराट परिस्थितियों के समक्ष घुटने नहीं टेकते अपितु वह देश-काल निरपेक्ष तथा समाज के बोध से तटस्थ रहकर उतरदायित्वों से बचना नहीं चाहता। अर्थतंत्र पर आधारित व्यवस्था में व्यक्ति निष्क्रिय और निश्चेष्ट हो जाता है, किन्तु सुविधा प्राप्ति के धरातल पर अधिक सजग और सचेष्ट दिखाई पडता है। समकालीन कवि और पाटक रचना के सृजन और पठन के आद भी उससे मुक्त नहीं हो पाते, बल्कि दोनों अपने भीतर कृति की पुनर्रचना में जुट जाते है और बोध प्राप्त करने लगते है। इस संदर्भ में समकालीन कविता के मूल्य बोध की चर्चा करते हुए यदि ऐतिहासिक दृष्टि से उसके मूल्यों की मीमांसा की जाए तो प्लेटो के अनुसार सत् श्रेयस और सौन्दर्य ये तीन ही सर्वोच्च मूल्य हैं। प्रश्न यह उठता है कि क्या आज समकालीन कविता में ये मूल्य उजागर हो रहे है? इन मूल्यों की विवेचना करने पर, विचार करने से पूर्व में देखना होगा कि आज की कविता में इन मूल्यों का स्वरूप कैसा है? मूल्यों के कौन-कौन से प्रकार हैं तथा उनकी समीक्षा के मानदण्ड कौन से हैं? और वे किस रूप में अभिव्यक्त हुए हैं?

मूल्य की परिभाषा देते हुए डॉ. विमल की मान्यता है-' 'मानविकी के संदर्भ में मूल्य का अर्थ है जीवन दृष्टि या स्थापित वैचारिक इकाई, जिसे हम सक्रिय नाम भी कह सकते हैं। भौतिक जगत में मूल्य उपयोगिता से संबंधित होते है। जबकि वैचारिक जगत में अपनेपन से। मूल्य वह वैचारिक इकाई है, जिसको आधार बनाकर जीवित रहते हुए व्यक्ति आत्मोपलब्धि करता है। मूल्य मानव की चिन्तन प्रक्रिया से ही पोषित होता है। वह मानव के हाथ से ही विनष्ट भी होता है। मूल्यों को नकारने के बोध में टूटने व जुडने की प्रक्रिया साथ-साथ चलती है।''

समकालीन कविता में आत्मज्ञान की अवस्था में, आत्मविश्वास के साथ मूल्य बोध में आतंरिक एकता के महत्तव की ओर इंगित किया जा रहा है। मानव जो जिन्दगी भोग रहा है उसको रूपायित करने के साथ ही कविता में ऐसे मूल्यों व प्रवृतियों का विवरण हैं, जिससे जीवन की सार्थकता की तलाश का बोध हो। मूल्यों की चर्चा करते समय मानव के अन्तर्तम को पहचानना होगा। अन्तर्तम में निहित मूल्यों के संश्लिष्ट रूप को कविता में चित्रित किया गया है। साहित्य गहन मानवीय अनुभवों से संपृक्त होकर ही आत्मीय बन सकता है। आज हमें विचारना होगाा कि समकालीनता और परम्परा का रिश्ता संघर्ष का है या एकत्व का? समाज के नियमों का ज्ञान करना, उन्हें भोगना और अनुभव करना ही समकालीनता की सामाजिक अवधारणा है। समकालीनता को केवल कालवाची प्रत्यय नहीं, वरऩ एक बोध और मूल्य

के रूप में देखा जाना चाहिए। वह तत्काल मूल्यों की खोज से जुडी है। समाज के नियमों का ज्ञान करना, उन्हें भोगना और अनुभव करना ही समकालीनता की सामाजिक अवधारणा है। हमारे आस-पास जो कुछ हो रहा है, उतना ही समकालीन नहीं है अपितु हमारे बीच आज जो छीज रहा है, चाहे वे हमारे जीवन मूल्य हो या हमारी परम्पराएँ, उनकी रक्षणीयता और पुर्नसृष्टि का सवाल भी इससे जुडा है। अत: समकालीनता का तात्पर्य अपने अतीत और भविष्य से विछिन्न वर्तमान काल-खण्ड नहीं है। यह तो अतीत में निर्मित होकर भविष्य की कुक्ष में प्रविष्ट होकर, एक प्रवाह के रूप में हमारे सामने आती है। जिज्ञासु मनुष्य स्वभावत: सामाजिक-ऐतिहासिक यथार्थ को जानना चाहता है। इस कार्य में यदि समकालीन साहित्य अभिव्यक्ति की नई पद्धतियों को एवं मानवीय स्वभाव की जटिलताओं को समझने की समझ नहीं दे पाता तो हम उसकी शरण में क्यों जायें? समकालीनता भी सामाजिक चेतना की तरह सामाजिक मनोविज्ञान में एक बेहद कठिन और जटिल प्रत्यय है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी सुविधाओं से यदि आज की सभी समस्याओं का समाधान हो पाता तो संसार में न्याय का शासन हो जाता, किन्तु ऐसा नहीं है। इस कार्य की निष्पति मानस की गुणवत्ता से ही सम्भव है, जो आज के मानव के पास है।

समकालीन हिन्दी गीत में प्रमुख प्रवृत्ति है- कविता की लोकोन्मुखता। सन् साठ के बाद कविता जिस तरह से आम आदमी का दस्तावेज बनकर उभरी है, उससे यह बात स्पष्ट हो गई है कि कविता , सिर्फ कवि की कल्पनात्मक अभिव्यक्ति नहीं, अपितु लोक जीवन का चलचित्र है, जिसमें वह सब कुछ है जो हमारे आस पास घटित हो रहा है।। कवियो ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि से लोक जीवन की समग्र गतिविधियों को बडी बारीकी से अपनी कविताओं में उकेरा है। लोककलयाण के लिए समाज के सजग प्रहरी की भूमिका का निर्वहन करते हुए सामाजिक, राजनीतिक, विद्रूपताओं, विषमताओं , कुरीतियों आदि पर कुठाराघात करके सुव्यवस्थित समाज की परिकल्पना की है।समकालीन हिन्दी गीत में लोकमानस मे संचित व्यवहारिक और प्रामाणिक जीवनानुभूतियों का सत्य अभिव्यक्त हुआ है, जिसमें लोक चेतना को जागृत एवं संस्कारिता करता जीवन्त प्रवाह है।

७.४ उपसंहार :

समकालीनता हमें आदर्शो के कोटर से निकालकर समाज एवं समय के यथार्थ से परिचित कराती है। सुधी पाठक जब नीतिमूल्यों के परम्परागत मापदण्ड त्यागकर, मुलम्मा चढी भाषा को त्यागकर समकालीन काव्य के भाव, भाषा, दृष्टि से सम्बन्धित अनेक उपलब्धियों से परिचित हो सकेंगें और खुरदरी मिट्टी के भविष्य की खुरदरी लेकिन यथार्थ भूमि पर बेहिचक कदम रख सकेंगें।

❑ ❑ ❑

• अध्याय - ८ •
श्री चन्द्रसेन विराट का गीत विधा को प्रदेय

८.१ आधुनिक काल में साहित्यकार की भूमिका :

विद्रोह साहित्य का मूल स्वभाव नहीं है। मूल स्वभाव है संस्कृत अथवा परिष्कृति की भावना का प्रसार करना, मनुष्य को सुसंस्कृत बनाना, हीनता, द्वेष, निराशा आदि जैसे नकारात्मक पक्षों की उपेक्षा करके वह जीवन विकास, एकता, समानता, सद्‌भावना आदि सकारात्मक पक्षों की स्थापना करता है। नकारात्मक पक्ष का उपयोग भी साहित्य करता है, किन्तु उसके स्वीकार के लिए नहीं, बल्कि उससे सम्भावित हानिकर या विनाशकारी कर्मो के कुपरिणामों को दिखाकर उनकी त्याज्यता सिद्ध करने के लिए। हमारा समकालीन साहित्य क्या हमें बैचेन या उद्धेलित करता है? हमारे देश की परिस्थितियों ने हमारे साहित्य को ही बैचेन और उद्धेलित कर दिया है पिछले पन्द्रह-बीस वर्षो में दुनिया इतनी बदल गई है कि साहित्य को स्वयं का अस्तित्व बनाये रखने के लिए अपने स्वरूप में कुछ क्रांतिकारी बदलाव लाने पर सोचना पड रहा है। सिनेमा, टीवी, इंटरनेट और मोबाइल ने वातावरण में ऐसा परिवर्तन कर दिया है कि लगता है साहित्य के विरुद्ध कोई साजिश रची गई है. यह तकनीकी क्रान्ति सुनामी की तरह आई उसकी तीव्रता को रोकना कठिन जरूर है, पर असम्भव नहीं. हमें साहित्य में इस भयावह स्थिति को समझना होगा। समकालीन साहित्यकार को चेतना होगा, पूर्ण अनुभूतिशीलता और संलग्नता से अपने लेखकीय कर्म का निर्वाह करना होगा। उसे समाज से किसी प्रकार की अपेक्षा किये बिना अपने कर्म को सततता और सजगता से करना होगा।

जिस तरह से आज गीत आम आदमी का दस्तावेज बनकर उभरा है, उससे स्पष्ट है कि गीत सिर्फ कवि की कल्पनात्मक आत्मिक अभिव्यक्ति ही नहीं अपितु लोक जीवन का चलचित्र है, जिसमें वह सब कुछ है जो हमारे आस-पास घटित हो रहा है।

गीत की जीवन्तता इस बात पर निर्भर करती है कि वह कितना डुबोता है और कितना आस-पास का दर्शन कराता है। इस गीत के साथ चलते हुए हम वर्तमान को देख सकते हैं और पा सकते हैं उस परिदृश्य को जिसमें जीते-मरते, लडते-झगडते, बौखलाते-बिसूरते, तडपते-कसकते, और हर ठोकर पर एक जोडी दर्द को गाँठ बाँधते, किन्तु फिर भी जीते आदमी की ''एक्सरे-प्लेट्स'' है।

समकालीन गीत वह है जिसमें बनावट कम है और बुनावट अधिक। इसमें पूर्णत: कल्पित, आरोपित और अद्वितीय की तलाश नहीं की गई है, वरन् जो सामने घटित हो रहा है, उसे ही रचनात्मक स्तर पर खुलासा करके कहा गया है। पिछले कुछ वर्षो से आदमी कितना टूट कर बिखरा है, कितना बेबस और लाचार होकर जीता रहा है, कितने टुकडों में बँटा है वो यह सब श्री विराट के गीत के बही खातों के पन्नों में पढा जा सकता है।

उनके पिछले दो दशक के गीतों में देश में घटित होने वाली वारदातों के फलस्वरूप असफलताओं का विक्षोभ और आक्रोश अभिव्यक्त हुआ है। उनके गीत मानवीय जीवन संघर्ष का प्रतिबिम्ब है। डाँ. उपाध्याय का मत है-'' समकालीन कविता अपने समय के मुख्य अन्तर्विरोधों और द्वन्दों की कविता है, समकालीन कविता में जो हो रहा है का स्पष्ट खुलासा है। इसे पढकर वर्तमान काल का बोध हो सकता है, क्योंकि उसमें जीते, संघर्ष करते, लडते, बौखलाते, तडपते, गरजते तथा ठोकर खाकर सोचते वास्तविक आदमी का परिदृश्य हैं------------------------ जीवन और मूल्यों की अमूर्त धारणाओं के स्थान पर सताये हुए लोगों का विरेचन और विद्रोह है, द्रोह हैं।'' मूल्य मानव के विकास, उत्थान, परिवर्तन और प्रगति के द्योतक है। जीवन में कुछ मूल्य चिरन्तन होते हैं और कुछ मूल्य परिवर्तनशील होते है। चिरन्तन मूल्यों में देश, काल, समय के अनुसार कोई परिवर्तन नहीं होता, वे शाश्वत होते हैं। प्रश्न यह है कि क्या कविता में शाश्वत मूल्यों का समावेश है?

मानवीय द्वन्द को उजागर करने में उनके गीत किस प्रकार गतिशील है, यह उनके गीतों के विश्लेषण से स्पष्ट है।

वास्तव में समकालीनता व्यक्तिगत जिन्दगी की और विराट समाज और इतिहास की समस्याओं से जुडी होती है और विराट के काव्य में व्यक्तिगत एवं सामाजिक जुडाव होने के कारण वह समकालीनता से ओत-प्रोत है।

गीतकार एक साथ भाव, वस्तु, और संदर्भो के अनुकूल काल के दोनों छोरों पर समानान्तर यात्रा करता है। समकालीन रचना का कार्य परम्परा के दरवाजे का ध्वस्त करना नहीं अपितु उसे खोलना है। रचनाकार नए यथार्थ की खोज केवल अपने लिए नहीं,वरन् समाज के लिए करना चाहता है।

कोई भी रचना अपने आप में समकालीन नहीं होती वरन् उसे पढने पर जो घटित होता है, वह समकालीन होता है। रचना में समकालीनता का दिग्दर्शन होने पर संवेदनात्मक ताजगी का बोध होता हैं।

सामयिक प्रश्नों से मुठभेड, साहित्यिक अभिव्यक्ति का अहम् हिस्सा रहा है। गीतकार अपने समय के यथार्थ को खगांलकर सामयिक समस्याओं से भिडता है। आज वैश्वीकरण ने जहाँ विश्व को जोडा है, वही मानव-मानव के बीच दूरियां भी खडी कर दी है। बाजारवाद और उपभोगवाद ने मनुष्य को संवेदनाशून्य बना दिया है। संवेदना की जगह आत्मकेन्द्रित मानसिकता बढ़ गई है। समाज के इन्हीं सवालों का विश्लेषण श्री विराट के गीतों में हुआ है। जहाँ श्री विराट का काव्य -सृजन सन्दर्भो में इस अपेक्षा की दूर-दूर तक पूर्ति करता है। वहीं उसमें अभिजात्यवादी और स्वच्छन्दतावादी तत्वों का उचित समन्वय है। काव्य के अनिवार्य तत्व रस और छनद का उसमें वैसा अविचारित परित्याग नहीं मिलता जैसा कि नयी कविता - अकविता के कवियों द्वारा किया गया है, न कि रीतिकालीन कवियों जैसा रूढिबद्ध परम्परा का मोह दिखाई देता है। वैचारिक नवीनता और सार्थक युगीन चिन्तन का सार लिए हुए समीक्ष्य काव्य की संवेदना एवं शिल्प नवीन प्राचीन की युगाानुरूप स्पृहणीय प्रस्तुति है। अतएव स्वागत के योग्य है। कवि ने प्रचलित रूढियों और भ्रामक स्थापनाओं के विरूद्ध तथ्यपरक और तर्कसम्मत सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दृष्टि देकर हिन्दी गीत एवं गजल के स्वतन्त्र विकास का मार्ग निर्मित किया है।

समकालीन साहित्यकार में या तो दिशाहीनता है या विदेशी अनुकृति अथवा यौन विकृतियों का चित्रण। यही दशा अभिव्यक्ति के माध्यम या शैली की भी है। उसमें या तो निजीपन है कि वह पूर्णतया एकान्तिक है, या इतनी अस्पष्टता है कि कभी-कभी ऐसा लगता है कि यह भी ज्ञात नहीं होता कि वह क्या कहना चाहता है, अथवा किसी नये शैली-शिल्प के निर्माण की इतनी ललक है कि जिस से उसी के कारण साहित्य जगत में वैशिष्ट्र्य प्राप्त करने का असफल प्रयतन करता है. ये स्थितियाँ वर्तमान युग के सन्दर्भ में वस्तुत: चिन्तनीय है.

आज का युग सामान्य जन की दृष्टि से निराशा का युग हो गया है, अनास्था का युग हो गया है और अन्तर्द्वन्द (क्या करें या क्या ना करें की मानसिक स्थिति) का युग हो गया है, जिस की अभिव्यक्ति आज का साहित्यकार कर भी रहा है। किन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है. उसे तो समाज में एक क्रांति लानी है. जन-जन के ह्रदय में तीव्र उद्वेलन उत्पन्न करना है. वह अपनी भूमिका का निर्वाह तभी कर सकता है, जब वह आज के युग को आशा, आस्था और कर्मण्यता का युग बना दे। अपने तीव्र आघातों से कुहासे को छाँटकर ऐसी ज्योति विकीर्ण करे, जिसके प्रकाश में समाज अपना नव्य रूप निर्माण करने में समर्थ हो सके।

सवाल उठता है कि घनघोर स्वार्थ, लिप्सा, छल और आचरण भ्रष्ट शब्दों के तुमुल कोलाहल के इस समय में संयम, शील, सौहार्द, समानता, संस्कारशीलता तथा मुक्ति का मार्ग दिखाने वाले साहित्यिक शब्द क्या अब कहीं सुने और पढे जायेंगें या साहित्य और उसके रचयिता को निर्वासन का दुख भोगना होगा?

८.२ चन्द्रसेन विराट की देन :

विराट जी एक श्रेष्ठ गीतकार है, इससे भी कहीं अधिक एक अच्छे, सहज, सरल और संवेदनशील इन्सान हैं। एक नौकरीपेशा होते हुए भी सामाजिक परिस्थितियों को अनुभव करते हुए उनकी गीतयात्रा जारी है। उनकी सम्पूर्ण ग्रन्थों का अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष निकलता है कि छायावादोत्तर हिन्दी गीतिकाव्य यात्रा के विकास में महतवपूर्ण भूमिका होने के बावजूद उन्हें आलोचकों ने वह स्थान नहीं दिया,जो उन्हें मिलना चाहिए। किन्तु वे इससे निराश नहीं थे वे लिखते है कि लिखना मेरी सात्विक विवशता है। मैं अपना काम कर रहा हूँ और रचना को अपना काम करने के लिए स्वतन्त्र मानता हूँ। कोई भी सक्षम रचना विपरीत परिस्थितियों में भी करवाने में सक्षम होती है। मेरे अच्छे समीक्षक तो मेरे पाठक हैं। मंच पर जब मैं रचनायें पढता हूँ, तो पाठकों की प्रशंसा ही मेरा पुरस्कार है। पाठको की चिंता करने वाले विराट जी ने केवल सौन्दर्य या श्रृंगार पर ही नहीं लिखा है। यह बात और है कि उनके समग्र लेखन में लगभग ८० प्रतिशत श्रृंगार पर ही जोर दिया गया है। किन्तु वे अपने समय बोध ओर समकालीन संदर्भो से गहराई से जुडे हैं। वे अपनी स्पष्टवादिता के लिए जाने जाते हैं। उनके शब्दों में –‘‘ हम अनुभव करते हैं कि देश वहीं का वहीं खडा है। गरीब और गरीब हुए हैं तो अमीरों की इमारतें ऊँची उठ रहीं हैं। उदाहरण:–

पाँच दशकों में भी पिछडा
तो यह किसकी लाचारी हैं।
पूछ रहा है देश बताओ
यह किसकी जिम्मेदारी है।’’

साहित्य और कलाओं के सरलीकरण और उसके रागदरबारी आलाप को लेकर भी कवि ने गीतों में नेताओं की खबर ली हैं– कला, ज्ञान, विज्ञान क्षेत्र को भी बाजार बना डाला। दैनिक वेतन पर कोयल का गायन अब सरकारी है।’’ हिन्दी की दुर्दशा को लेकर भी यह रचनाकार कम व्यथित नहीं हैं–

''हिन्दी अब भी उपेक्षिता है, अंग्रेजी पटरानी है।

करूण कहानी रही देश की, अब भी करूण की कहानी है।''

यही दुर्दशा देश में आज प्रतिभा की हत्यारी है।

विराट जी मानते हैं कि कथ्य रागात्मक हो या समकालीन, वे स्वयं को जन–जन का गीतकार और उनका पक्षधर बताते है। उन्होंनें लिखा भी है कि– जिनका कहीं न कोई, हम पक्षधर उन्हीं के। जो बेजुबान बेबस, उन्हीं की जुबान हम है।'' छायावादोत्तर हिन्दी गीतिकाव्य यात्रा के विकास में महतवपूर्ण भूमिका निभाने वाले श्री विराट जी को विस्मृत नहीं किया जा सकता। वे जितने लोकप्रिय मंचों पर रहे, उतने ही चर्चित प्रकाशन के स्तर पर भी। दो दर्जन से अधिक गीति रचनाओं की पुस्तकों के गीतकार विराट जी का अपना महत्व है। उनके गीतों की तासीर भी यही है कि कोई अपने आग्रहों,दुराग्रहों या पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर अकेले में उनके गीतों को गुनगुनाए तो वे पूरा सुकून देते है। किसी भी अच्छी रचना की इससे बढकर और कोई कसौटी नहीं हो सकती।

यह बात और है कि रचना की दुनिया का यह चलन रहा है कि रचनाकार के इस संसार से जाने के बाद ही उसके कृतित्व का मुल्याकंन किया जाता है। **विराट जी के साथ भी स्थितियों को विविधता से अभिव्यक्त करते हैं।** सामयिकता के साथ ही उनके गीतों में ऐसे तत्व भी विद्यमान है, जो उन्हें शाश्वत और स्थायी बनाते हैं। उनकी सूक्ष्म दृष्टि से उनकी लेखनी से नए –नए चित्र बन पडे हैं, जो मौलिक होने के साथ ही नवीन दृष्टिकोण भी प्रदान करते हैं। उनका गीतिकाव्य गहन अनुभूतियों और उच्च कल्पनाओं का स्पष्ट प्रतिबिम्ब उपस्थित करती है।

वे पारम्परिक रसधारा से अपने को कभी पृथक नहीं कर सके, रसात्मक प्रवृतियों से कभी उच्छिन्न होकर नहीं चले। उनके पास व्यापक स्पष्ट कोमल कल्पना है। गीतों में जीवन का प्रवाह है। वे जीवन से अलग भोगना नहीं चाहते। उन्हें जीवन के विशुद्ध चित्रों को अंकित करने में आनन्द मिलता है। वे नए मूल्यों के साथ आगे बढते हैं, पर वे पुराने मूल्यों को भी छोडना नहीं चाहते। विराट ने स्वयं स्वीकार किया है– ''अस्वस्थ एवं जड परम्पराओं से जुडे रहना प्रगति के लिए सर्वथा बाधक है, इसलिए परम्पराओं का जीवन के हित में तोड देना कोई गुनाह नहीं मानता हूँ मैं। यह हुआ तो इससे गीत में नई भावचेतना का उदय हुआ है– उसके तेवर में निखार आया है। जहाँ भी जीवन के संघर्ष ने मौत की हथकडियाँ तोडी है, मैंने जीवन को जिन्दाबाद कहा है। परम्परा तोडने के जोश में अपनी मूलभूमि से उखड जाना गँवारा नहीं। कल्पनाओं का वायवी आकाश लुभाता तो है, किन्तु खडे रह सकने के लिए यथार्थ की भूमि भी तो चाहिए,

मेरे गीतों ने आकाश में उडानें तो भरी है, किन्तु सूरदास के पंछी सा मन पुन: पुन: जहाज पर ही लौट आया है।'' किन्तु इसी बात पर पुर्नविचार करते हुए विराट ने माना कि '' गीत का क्षेत्र बहुत व्यापक है। जीवन का कैनवास भी बहुत विशाल है। अत: सभी कुछ मेरे गीतों का विषय हो सकता है और हुआ भी है। केवल कल्पना एवं यथार्थ का विवाद उठता ही नहीं। जीवन का गीत गाते समय जो कुछ उमड-घुमड कर उठे, वही गीत मैं बुन देता हूँ।''

विराट के साथ यही होता है कि कोई एक अनुभूति उनकी संवेदना के साथ रम कर अवचेतन में उतर जाती है। प्रसन्नता के क्षणों में यह पक कर अभिव्यक्ति के लिए उनसे श्शब्द माँगती है। विराट की स्वरवती साँस उसे अभिव्यक्ति देती है। भीतर का वह भाव जब कंठ पर दस्तक देता है, तो वे सरगम के द्वार खोल देते हैं-

''कुछ कथ्य हृदय में व्याकुल भटक रहा।
हो सके इसे अभिव्यंजन का वर दो।''

विराट की मान्यता है कि समर्थ गीतकार नवीनतम भावबोध, मनुष्य की संकटग्रस्त स्थितियों से प्रसूत तनाव एवं संस्कृति की टूटन को गीत के माध्यम से सही संदर्भो में व्यक्त कर सकता है।

विराट के श्शब्दों में - ''गीत विधा न पहले पुरानी थी, न आज हुई है। समय की धडकनों को सुनते हुए लिखा जाने वाला हर समय गीत नया ही रहा है, जिसने समय को नहीं समझा उसे समय ने भी निदर्यतापूर्वक नकार दिया है। गीत समय सापेक्ष तो है ही, कालातीत भी है, क्योंकि उसमें मानव मन के श्शाश्वत अनुभवों का अनुगायन व्यक्त हुआ है। इसलिए मैं गीत विधा को आज के परिप्रेक्ष्य में असंगत एवं पिछडी हुई नहीं मानता। औद्योगिकता के इस युग में जीते हुए भी मानव में रागात्मकता है और इसलिए गीत उसे आज भी सही सन्दर्भो में व्यक्त करता है। मेरे गीत मनुष्य के स्वाभाविक सुख-दु:ख, मिलन-विरह एवं जीवन की सम्पूर्ण अनुभूतियों को व्यक्त कर सके, यही कामना रही है। मानव एवं उसकी अनुभूतियाँ मेरे गीतों का अन्तिम विषय रहे हैं।''

जब नई कविता के रचनाकारों ने गीत की मृत्यु की घोषणा कर दी तो विराट ने लिखा है कि-

''मथाई हो रही दधि की, अभी नवनीत बाकी है।
मरण की घोषणा कर दी, अभी तो गीत बाकी है।''

नई कविता के शिविर प्रर्वतकों द्वारा रचित काव्य की दुरूहता, अबोधता, अस्पष्टता एवं अज्ञेयता ने विराट जी को कभी आकर्षित नहीं किया, अपितु इस प्रकार के अबोध या बोध के विरुद्व अपनी आवाज

बुलन्द की। प्रत्येक कलम के धनी लेखक के व्यक्तित्व का तकाजा यही है कि वह सत्य को पहचाने और उसी को सही अभिव्यक्ति प्रदान करे। विराट जी ने न तो कभी अनचाहे समझौते किये और न ही अपनी अस्मिता को त्यागा। भले ही उन्हें कदम-कदम पर कितने ही विरोधों और विपरीत स्थितियों को सहना पडा।

इस परिवेशीय लडाई में कवि कभी स्वयं से जूझता है, कभी सीधे समस्याओं से, कभी क्षार बनका सन्नाटे का छंद बुनता है,कभी खुद को ताउम्र एक भीतरी आग मे सुलगने को छोड देता है।- यह बेपरवाही उसे तभी मिलती है।जब वह सीधे जनता से संवाद कर रहा होता है।, इंद्रियों को सजग रखता है।दूसरों के दु:ख-सुख देखने व सुनने के लिए और यह जो कुछ भी जोखिम वह कविता में उठाता है।वह मात्र अपनी संवेदना के बल पर।

निष्कर्षत: विराट का हिन्दी गीति काव्य के प्रति जो सबसे बडा योगदान है वह यह है कि अपनी रचनाधर्मिता को ऐसी स्तरीय गंभीरता और गरिमा के साथ लिया है कि हिन्दी गीत कविता की गरिमा को किंचित भी आघात नहीं पहुँचा। गीत की साहित्यिक एवं कलात्मक गरिमा को भी अक्षुण्ण रखा और उसके रूप शिल्प में नए-नए सार्थक प्रयोग भी कर रहे हैं। आज की समकालीन नागरिक जीवन की विविध समविषम स्थितियाँ लक्ष्य और सौन्दर्य को पूरी तरह युग सापेक्ष रीति से अपने गीतों में अभिव्यक्त कर रहे है। गीत के प्रति समर्पित चन्द्रसेन विराट जैसे गीतकारों के कारण ही आज जीवंत हैं, निराश्रित भी नहीं हो पाया है। उनके काव्य में भाव की कार्यवाही, खुद के प्रति निकटता, इंसनियत के प्रति निकटता और प्रकृति की रहस्यमयी अभिव्यक्ति का समावेश है।

अपने सृजन कर्म की सार्थकता विराट जी ने कठोर श्रम के बल पर स्थापित की है। जीवन मूल्यों को अपनी रचनाओं में समाविष्ट करके सम्मानित रचनाकारों में अनूठी पहचान बनाई है। कुल पच्चास गीत, गजल और मुक्तक संग्रह के रचयिता, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, वागीश्वरी तथा अन्य कई सम्मानित पुरस्कारों से सम्मानित श्री विराट के इस प्रदीर्घ सम्पन्न काव्ययात्रा के सब आयामों, साहित्यिक उपलब्धियों और उनके साहित्यिक योगदान को इस लघु श्शोध प्रकल्प में समेट पाना दुष्कर ही नहीं असंभव भी है।

❑ ❑ ❑

श्री चन्द्रसेन विराट के साथ लिए गए साक्षात्कार के कुछ अंश

प्रश्नोत्तरी

(१) छात्रावस्था में आपका प्रिय विषय कौनसा था?क्या काव्य में विशेष रुचि थी?

उत्तर : विज्ञान और गणित का छात्र रहा, तथापि मिडिल स्टेडण्र्ड से ही हिन्दी भाषा में रूचि रही। मैट्रिक तक आते- आते कई तुकबन्दियाँ करके कापियों में लिख रखी थी किन्तु उन्हें छिपाता रहा।

(२) आपके कार्यक्षेत्र का अनुभव और उसका परिवेश आपके लेखन में कहाँ तक सहायक हुआ?

उत्तर : पिता की लम्बी बीमारी, आर्थिक तंगी, सर्विस में पात्र होते हुए भी उपेक्षा और कडवे अनुभव, सुबह से रात तक की व्यस्तता के कारण लिखने-पढने का समय न मिलने पर भी कार्यक्षेत्र के दौरों पर जाने वाली यात्राओं और देर रात तक लिखने पढने की आदत हो गई थी। इसी निरन्तरता ने आज मुझे ये मुकाम दिया। सेवाकाल की खट्टी - मीठी अनुभूतियों के दंशों एवं अनुभवों ने मुझे व्यंग्य एवं व्यवस्था के विरोध की श्शक्ति एवं अभिव्यक्ति प्रदान की।

(३) आपके नाम के साथ विराट जुडने के पीछे कोई कहानी है या भावनात्मक लगाव है?

उत्तर : कविताएँ लिखने के प्रारम्भिक दौर में, मैं वीर रस की कुछ लम्बी कविताएँ लिखता था और ऊँची आवाज में जोश-खरोश के साथ पढता था। यह गीतो की रचना एवं मधुर कंठ से प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता था। वीर रस की जोशीली रचनाओं की प्रस्तुति के बाद मित्रगण मुझ स्थूलकाय की 'तुम्हारा सब कुछ विराट है भई, क्या शरीर, क्या कविताएँ और क्या पढना। सब कुछ के साथ तुम विराट ही हो ।'

मजाक में कही जाने वाली इस टिप्पणी के साथ विराट नाम धीरे-धीरे मेरे नाम के साथ कब जुड गया (शायद १९५५ से १९५९) कुछ ठीक से मुझे भी याद नहीं है। विराट उपनाम मेरे नाम के साथ जुडा एवं प्रकाशित/प्रसारित एवं थोडा बहुत प्रचारित हो जाने के बाद इसे छोडा जाना संभव ही नहीं रहा और यह उपनाम मुझे काम से वामन एवं नाम से विराट होने का बोध कराता रहता है। शायद इसी बोध ने मुझसे स्वयं पर यह व्यंग्य भी करवाया है कि- 'तुम थे विराट लेकिन वामन निकल गये।' १९६० में डॉ. हरिवंशराय बच्चन से भेंट करके आशीर्वाद लिया था। जब भी उन्होंने कहा था कि 'अच्छे भले गीतकार

हो, कोमल मधुर गीत लिखते हो, यह क्या अपना नाम विराट रख लिया? कितना परुष, कठोर एवं ध्वनि की दृष्टि से गीतकार के लिए अनुपयुक्त नाम रख दिया तुमने। मुझ पर घडों ठण्डा पानी पड गया। सयंत होकर उत्तर दिया– 'डॉक्टर साहब मुझे मेरा कवि नाम चुनने का अवसर ही कहाँ मिला? यह तो प्रारम्भिक अवस्था में मेरे मित्रों द्वारा मजाक में दिया गया नाम है जो मेरे साथ चिपक गया है। अगर मुझे मौका मिलता तो अपने लिए कोई मधुर सा, कोमल सा नाम नहीं चुनता? तब तो फिर इसी नाम को अपने कवित्व से सार्थक करो। डॉ. बच्चन बोले– मैने आँखें मूँदकर इसे उनके आशीर्वाद के रूप में ग्रहण किया और चुप हो गया।

(४) आपने गीत/गजल/मुक्तक जैसी विधाओं में लिखा है। आपको सर्वाधिक कौनसी विधा कहने में अच्छी लगती है और क्यों?

उत्तर : जैसे माँ को अपनी हर सन्तान अच्छी लगती है ठीक वैसे ही मुझे अपनी तीनों काव्य विधाएँ प्यारी है। तथापि गीत ही वह विधा है, जिसमें मेरा मन सर्वाधिक रमता है। वैसे तो सूझा हुआ विषय अपने अनुकूल छन्द एवं विधा लेकर ही अवतरित होता है। किन्तु सर्वाधिक प्रिय विधा मेरे लिए निर्विवाद रूप से गीत ही रही है। गीत रचना में जो मुझे आनन्द मिला है,वह सर्वथा अनूठा और विशिष्ट है। गीत ने ही मुझे सर्वाधिक बाँधा और लिखवाया है।और तो और अपनी रचना प्रक्रिया को भी मैने गद्य में न लिखकर गीत में ही लिखा है।

(४) सामाजिक विद्रूपताओं पर टिप्पणी करते हुए आपकी श्शासकीय सेवा क्या कभी आडे आया? श्शासकीय सेवारत रहते हुए लेखन में मुश्किलों का सामना करना पडता है?

उत्तर : कवि हूँ तो सामाजिक विद्रूपताओं पर चोट किये बिना कैसे रह सकता हूँ? वह क्या अब और क्या तब? जब स्वयं को नहीं रोक पाया तो बहुत सोचकर वह हथियार चुना और उसके साथ वह दुशाला भी चुना कि जिसकी चोट बाहर तो दिखेगी नहीं पर अन्दरूनी मार अवश्य करेगी। सच पूछिये तो एक कवि का काव्य कौशल भी यही माँग करता है। वह एक राजनायक की भाँति नारे नहीं लगायेगा। अपनी बात को मारक बनाने के लिए वह नारों से इतर शब्दशक्ति का ऐसा प्रयोग करेगा कि सुनने वाला या पढने वाला एक बार सोचने को विवश हो जायेगा।

शासकीय सेवारत रहते हुए यह व्यंग्य ही था जिसकी सहायता से अपना मंतव्य प्रकट किया और वहाँ तक उस व्यंग्य को पहुँचाया जहाँ उसका पहुँचना लाजिमी था। प्रकारान्तर से कवि संभव चातुरता और कुशलता का प्रयोग करके अपनी बात बिना किसी का नाम लिये पूरी ताकत से कही और प्रभाव पैदा किया।

संबधित तो समझा ही, अन्य लोग भी समझ गये कि व्यंग्य किस पर और किस बात को लेकर किया गया है। मैंने अपने कवि कुल पर व्यंग्य किया है–

''साहित्य और संस्कृति को हमने ही
ऊँचा गरिमामय हाट बाजार दिया।
सामान्य कुलवधु का घुँघट हमने
मंचो पर अपने हाथ उधार दिया।''

व्यंग्य की धार काटे तो पर रोने ना दे इसी पद्धति का पालन करते हुए ४० वर्षो की श्शासकीय सेवा में कवि कर्म कभी मेरे आडे नहीं आया।

(५) साहित्य सृजन की प्रेरणा कब और कैसे मिली ?

उत्तर : मेरी माँ वेणुताई डोके भगवत पूजा करते हुए मधुर स्वरों में भजन गाती रहती थी। उन्हें सुनकर ही मेरे बालमन पर उनकी तरह गाने का संस्कार पड गया। फलत: आगे चलकर तुकबन्दियाँ करने एवं उन्हें सुरीले कंठ से गाकर सुनाने की प्रेरणा दी। कुमारावस्था में इन्दौर में सुने राम दंगल जिसमें आमने–सामने बैठकर कवियों की मण्डली कविताएँ पढती थी, ने भी खूब प्रेरित किया और स्वयं की रचनाएँ लिखवाई।

(६) आप काव्य को किस अर्थ में ग्रहण करते हैं?(कला के लिए कला या समाज के लिए कला)

उत्तर : मेरा स्पष्ट मत है कि कला अंतत: समाज के लिए ही है और इसी में उसकी सार्थकता भी है।

(७) कवि और कविता दोनो पर आजकल कुछ लोग व्यंग्य करते हैं आप इसका क्या कारण मानते हैं?

उत्तर : कवि होने एवं कविता लेखन तथा उसकी अशांलीन प्रस्तुति अथवा दिखावा मात्र उसे हास्यास्पद बना देता हैं और वह व्यंग्य का कारण बनता भी है। तथापि अभावुक एवं सतही समझ के लोग कवि एवं कविता को गंभीरता से नहीं लेते,और व्यंग्य करने लगते है, जो उनकी अपरिपक्क, अंगंभीर एवं ओछी मनोवृति का परिचायक हैं।

(८) आपने कभी गद्य लेखन क्यो नहीं किया?

उत्तर : हर रचनाकार की अपनी प्रतिभा एवं उसकी अनुकूल चयनित विधा में वह सृजन करता है। मेरी नैसर्गिक रुचि के अनुसार मुझे कविता करने में ही सन्तुष्टि मिलती है।

(९) आपकी अपनी वो रचना जिसे आप सर्वाधिक स्नेह देते हो?

उत्तर : वैसे तो अपनी विविध रचनाओं में से किसी एक को चुनना कटिन कार्य है, तथापि गर यह कठोर कार्य करना पडे तो मैं एक गीत चुनूँगा - ''गंगाजल अपमानित होता है। प्रारम्भिक दिनों में इसी गीत ने मुझे गीतकार की छवि प्रदान की और गीतकारों की महफिल में बैठने का अधिकार भी दिया।पाँच प्रतीकों यथा- आँसू, बादल, काजल, दीपक एवं ताजमहल को लेकर लिखा, यह गीत मेरी पहचान बन गया। उस गीत का एक छन्द यहाँ उद्धृत किया गया है-

''यदि आँसू को तुम पानी कहते हो
तो गंगाजल अपमानित होता है।
हर दीपक ही वंशज है सूरज का
उसके प्रकाश का भी तो वारिस है।
संध्या उसके ही कारण सधवा है
उससे खण्डित तम की हर साजिश है
यदि असमय ही तुम दीप बुझाते हो
ते उद्याचल अपमानित होता है।''

(१०) आज के गिरते सामाजिक/राजनैतिक/नैतिक स्तर में साहित्यिक वातावरण को आप कितना दोषी मानते है?

उत्तर : सामाजिक/राजनैतिक/नैतिक पतन के लिए आप साहित्यकार को कदापि दोषी नहीं करार दे सकते। वह तो समाज का पहरेदार होता है। वह समाज को सावधान करता रहता है-

''ऊँघता नेतृत्व, पहरेदार भी सोये मगर।
लेखनी वाले निरन्तर जागरण करते रहे।''

इस सबके बावजूद सामाजिक/राजनैतिक/नैतिक स्थितियों में पतन होता हैं। अनेक बार कवि भी उसी रास्ते पर चल पडता है पर विवेकशील रचनाकार समाज को झकझोरते रहते है। साहित्य का अर्थ ही यही है कि जो समाज का हित धारण करे।

❑ ❑ ❑

परिशिष्ट ग्रन्थ सूची :

आधार ग्रन्थ सूची :

१. मेंहदी रची हथेली- चन्द्रसेन विराट, गिरधर प्रकाशन गुरूद्वारा रोड, करोल बाग, दिल्ली, १९६५

२. ओ मेरे अनाम- चन्द्रसेन विराट,लोकचेतना प्रकाशन, जबलपुर १९६८

३. स्वर के सोपान- चन्द्रसेन विराट, साहित्य भारती प्रकाशन, बम्बई, १९९६

४. किरण के कशीदे- चन्द्रसेन विराट, सरल प्रकाशन, दिल्ली, १९७४

५. मिट्टी मेरे देश की- चन्द्रसेन विराट, प्रगति प्रकाशन, आगरा १९७८

६. पीले चावल द्वार पर- चन्द्रसेन विराट, ममता प्रकाशन,इलाहाबाद, १९७७

७. दर्द कैसे चुप रहे - चन्द्रसेन विराट, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली,१९७६

८. भीतर की नागफनी- चन्द्रसेन विराट, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली,१९७७

९. पलकों में आकाश- चन्द्रसेन विराट, प्रगति प्रकाशन, आगरा १९७८

१०. बूँद-बूँद पारा- चन्द्रसेन विराट, चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद,१९७९

११. सन्नाटे की चीख- चन्द्रसेन विराट, संवेदना प्रकाशन, कासिमपुरा पावर हाउस, अलीगढ,१९९६

१२. गाओ कि जिये जीवन- चन्द्रसेन विराट, लाजपत नगर,साहिबाबाद, २००३

१३. सरगम के सिलसिले-२००८

१४. ओ गीत के गरूड- २०१२

आधार ग्रन्थ (मुक्तक संग्रह)

१. कुछ छाया कुछ धूप- चन्द्रसेन विराट, लोकवाणी संस्थान, अशोक नगर, दिल्ली,१९९८

२. कुछ पलाश कुछ पाटल- चन्द्रसेन विराट,दिशा प्रकाशन, त्रिनगर दिल्ली

३. कुछ सपने कुछ सच- चन्द्रसेन विराट, दिशा प्रकाशन, त्रिनगर दिल्ली

४. कुछ अंगाारे कुछ फुहारें- चन्द्रसेन विराट, दिशा प्रकाशन, त्रिनगर दिल्ली, २००७

५. कुछ मिश्री कुछ नीम - चन्द्रसेन विराट, दिशा प्रकाशन, त्रिनगर दिल्ली, २००९

६. कुछ लोहा कुछ मोम - चन्द्रसेन विराट, दिशा प्रकाशन, त्रिनगर दिल्ली, २०१३

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

१. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य- पृष्ठ १४१

२. गोस्वामी तुलसीदास- पृष्ठ ८६

३. काव्य रूपों के मूल स्त्रोत ओर उनका विकास- शशकुन्तला दुबे- पृष्ठ २७९

४. आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य का स्वरूप और विकास- डॉ. आशा किशोर- पृष्ठ ५५

५. हिन्दी गीतिकाव्य: उद्‌भव और विकास और भारतीय काव्य में इसकी परम्परा (अमुद्रित) पृष्ठ ३०८

६. गीतिकाव्य : पृष्ठ १८१

७. हिन्दी गजल: चन्द्रसेन विराट, सम्पादन- पुरूषोत्तम प्रेमी, सुरेश श्रीवास्तव, जगदीश पंड्या

८. अपरा-निराला-भारती भण्डार लीडर भवन ३ लीडर मार्ग, इलाहाबाद, १९८९

९. अरस्तु का काव्यशास्त्र- डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी अनुसंधान परिषद दिल्ली

१०. अंलकार विमर्श- कृष्णनारायण प्रसाद, साथी प्रकाशन सागर, १९६६

११. आधुनिक कविता की प्रमुख प्रवृतियाँ- डॉ. नगेन्द्र, गौतम बुक डिपो, दिल्ली, १९९१

१२. आधुनिक बोध, दिनकर, हिन्दी बुक सेन्टर, नई दिल्ली,१९७३

१३. कला और संस्कृति, डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, साहित्य भवन लिमि., प्रयाग, १९५२

१४. काव्य तत्व विमर्श- डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी, कोणार्क प्रकाशन, नई दिल्ली,१९९०

१५. नए साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र- गजानन माधव मुक्तिबोध, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली, १९९१

१६. पल्लव- सुमित्रानन्दन पंत, भारती भण्डार, प्रयाग, २००५

१७. पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धान्त- डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त- अशोक प्रकाशन, दिल्ली, १९७०

१८. भारतीय काव्य शास्त्र- डॉ. राजवंश सहाय हीरा, बिहार हिन्दी अकादमी, पटना, १९७६

१९. विराट विमर्श- सम्पादक डॉ. अनन्तराम मिश्र, लोकवाणी संस्थान, अशोक नगर, दिल्ली, २००४

२०. वृहत हिन्दी कोष - कालिकाप्रसाद- ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी, १९९१

२१. समसामयिकता और हिन्दी कविता- डॉ. रघुवंश- केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, १९७२

२२. साहित्य वर्चस्व और प्रतिरोध- डॉ. सुरेश गौतम, शब्द सेतु, दिल्ली,२००२

२३. नए साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र- मुक्तिबोध

२४. शुद्ध कविता की खोज, दिनकर

२५. देवराज पथिक, नयी कविता में राष्ट्रीय चेतना, पृष्ठ-२१

२६. गोपीनाथ श्रीवास्तव- हिन्दी अंग्रेजी थेसारस- पृष्ठ-१९

२७. राजनारायण पुर्ननवा: चेतना और शिल्प

२८. समकालीन कविता में लोकचेतना- डॉ. सत्यनारायण स्नेही

२९. भूमण्डलीकरण और समकालीन हिन्दी कविता- डॉ. श्याम बाबू शर्मा

३०. समकालीन हिन्दी कविता की नयी सोच - डॉ. पद्‌मजा घोरपडे

३१. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास- रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

३२. समकालीन कविता की भूमिका- डॉ. मोहन, अनंग प्रकाशन, दिल्ली-२००५

३३. समकालीन कविता और सौन्दर्यबोध, रोहिताश्व, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

३४. समकालीन कविता का बीजगणित- कुमार कृष्ण, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

३५. समकालीन कविता की भूमिका- डॉ. विश्वम्भर नाथ उपाध्याय एवं मंजुल उपाध्याय, मैक मिलन प्रकाशन, दिल्ली

३६. समकालीन कवि एक अंत:सूत्र- डॉ. रतन कुमार पाण्डेय,ग्रंथ रत्नाकर, मुम्बई

३७. समकालीन कवि दृष्टि और बोध- रतन कुमार पाण्डेय, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, २००२

३८. समकालीन कविता एक विश्लेषण, अशोक सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

३९. समकालीन हिन्दी कविता की संवेदना-डॉ. गोविन्द रजनीश, साहित्यागाार प्रकाशन, जयपुर

४०. समकालीनता और शाश्वतता- रोहिताश्व, विद्या प्रकाशन, कानपुर

४१. समकालीन हिन्दी कविता,अज्ञेय और मुक्तिबोध, डॉ. शशि शर्मा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

४२. समकालीन साहित्य एक नई दृष्टि- इन्द्रनाथ मदान, लिपि प्रकाशन, दिल्ली

४३. समकालीन सृजन संदर्भ- भारत भारद्वाज, वाणी प्रकाशन, दिल्ली

४४. समकालीन काव्य यात्रा- नंद किशोर धवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

४५. समयिक परिवर्तन में साहित्य की भूमिका- डॉ. रतन कुमार पाण्डेय,संजय बुक सेंटर, वाराणसी

४६. कविता के नए प्रतिमान- डॉ. नामवर सिंह , राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

४७. कविता क्या है- विश्वनाथ प्रसाद तिवारी- राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

४८. आधुनिक हिन्दी कविता- डॉ. कृष्णचन्द्र वर्मा

४९. साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य

५०. समसामयिकता और हिन्दी कविता- डॉ. रघुवंश

५१. वृहत हिन्दी कोष- कालिकाप्रसाद- ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी

५२. हिन्दी विश्वकोश- खण्ड तीन- सम्पादक रामप्रसाद त्रिपाठी- नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी

५३. भारतीय काव्य शास्त्र– डॉ. अशोक के श्शाह

५४. समकालीन कविता के आयाम– सम्पादक पी. रवि, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

५५. विराट वैभव (गीत, गजल, मुक्तक) १९९९

५६. चन्द्रसेन विराट के प्रतिनिधि गीत– १९९९

५७. विराट विमर्श – समीक्षा ग्रन्थ २००४

५८. चन्द्रसेन विराट का काव्य– समीक्षा ग्रन्थ– २००६

५९. चन्द्रसेन विराट –२०११

६०. हिन्दी कविता का अतीत और वर्तमान– मैनेजर पाण्डेय,वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली

६१. हमारे लोकप्रिय गीतकार– दुष्यन्त कुमार

६२. समकालीन कविता: नये प्रस्थान– परमानन्द श्रीवास्तव, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली

६३. नयी कविता: अनुभूति और संस्कृति – डॉ. राजकुमारी पाठक,जवाहर पुस्तकालय,मथुरा

६४. साहित्य का समाजशास्त्र– डॉ. दयानन्द तिवारी, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली

६५. समकालीन कविता के हस्ताक्षर– डॉ. गीता सिंह– विश्वभारती प्रकाशन

सहायक एवं सदर्भित पत्रिकाएँ :

१. अवध अर्चना– सम्पादक विजय रंजन, अंक– अप्रैल, जून १९९७।

२. संकल्प रथ– सम्पादक रामधारी– सितम्बर,२००४

३. साहित्य सरोवर, सम्पादक कमलकान्त– विराट विशेषांक, दिसम्बर,२००१

४. सोच– सम्पादक सुभाष गौतम, डॉ. विष्णु भटनागर (श्री विराट पर केन्द्रित अंक), अंक– दो, प्रकाशन वर्ष अमुद्रित।

५. नवनीत

६. आजकल

७. हंस

८. वागर्थ

९. आवेग–१३

१०. अमर उजाला, चण्डीगढ ९ सितम्बर २००० पृष्ठ–१५

११. अलाव

१२. समकालीन भारतीय साहित्य अंक १४७

१३. आलोचना, सहस्राब्दी अंक २३

१४. अनभै

१५. पहल

१६. ज्ञान गरिमा सिंधु

१७. करूणावती

१८. ज्ञानोदय

१९. प्रतिमान– वाणी प्रकाशन

२०. परिकथा

२१. दस्तावेज

२२. साहित्य सागर – कमलकान्त– हिन्दी गजल विशेषांक– अप्रैल २००२ और २००४

२३. धर्मयुग

२४. सरिका

२५. हिन्दी नवचेतना

❑ ❑ ❑

विषयानुक्रमणिका

क्रमांक संख्या	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
	प्राक्कथन	१
	विषय प्रवेश	३
	प्रस्तावना	५
प्रथम अध्याय	हिन्दी गीत का उद्गम और विकास यात्रा	७–२९
द्वितीय अध्याय	छायावादोत्तर हिन्दी गीतों में समकालीन दृष्टिकोण	३०–४५
तृतीय अध्याय	श्री चन्द्रसेन विराट का व्यक्तित्व और रचनाधर्मिता की प्रेरणा अद्यतन प्रकाशित काव्य कृति परिचय	४६–५८
चतुर्थ अध्याय	श्री चन्द्रसेन विराट : कृतित्व समीक्षा	५९–८९
पंचम अध्याय	श्री चन्द्रसेन विराट के गीतों का कला पक्ष	९०–१०२
षष्ठ अध्याय	आधुनिक हिन्दी गीतकार और चन्द्रसेन विराट के गीत	१०३–१०९
सप्तम् अध्याय	श्री चन्द्रसेन विराट के गीतों में समसामयिक चिन्तन एवं चेतना की अभिव्यक्ति	११०–११९
अष्टम् अध्याय	श्री चन्द्रसेन विराट का गीत विधा को प्रदेय	१२०–१२६
	साक्षात्कार प्रश्नावली	१२७
	परिशिष्ट ग्रन्थ सूची	१३१
	आधार ग्रन्थ सूची	१३१
	सहायक एवं सन्दर्भित पत्र–पत्रिकायें	१३४